वर्ण-व्यवस्था

लेखक
मोहनदास करमचन्द गांधी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

वर्ण-व्यवस्था

लेखक

मोहनदास करमचंद गांधी

अनुवादक

रामनारायण चौधरी

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः

गीता :

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाअी देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहला संस्करण, प्रति ३,०००

डेढ़ रुपया

अगस्त, १९४८

प्रकाशकका निवेदन

हिन्दुस्तानी बोलनेवाले पाठकोंकी कअी दिनोंसे यह लगातार माँग हो रही है कि हम गांधी साहित्यका प्रकाशन हिन्दुस्तानीमें करें। अुनकी अिस स्वाभाविक माँगको पूरी करनेके लिअे हमने अेक निश्चित योजना बनाअी है। अुसीके फलस्वरूप हम यह पहली पुस्तक पाठकोंकी सेवामें रख रहे हैं।

१७-८-'४८

विषय-सूची

दूसरा हिस्सा : जाति और कुरीतियाँ

परिशिष्ट

मेरे लेख पढ़नेकी कुंजी

यह पुस्तक फिरसे पढ़नेकी मेरे पास फुरसत नहीं। फिरसे पढ़नेकी अिच्छा भी मैं नहीं रखता। मेरे पास दूसरा बहुत काम है।

मेरा खयाल यह है कि अिन्सान रोज आगे बढ़ता है या पीछे जाता है, कभी अेक जगह नहीं रहता। सारी दुनिया गतिमान या चलनेवाली है। अिसमें कोअी अपवाद नहीं है। कोअी चीज अिस नियमसे परे नहीं है। अिसलिअे अगर मैं यह दावा करूं कि मैं जैसा कल था, वैसा ही आज हूं या अैसा ही रहूंगा, तो वह दावा झूठा है। मुझे अैसा मोह भी नहीं रखना चाहिये।

यह सही है कि मेरे लेख या वचन अैसे होने चाहियें, जिनसे किसीको गलत खयाल न हो। मैं अैसा न लिखूं, जिसके दो या ज्यादा मानी हो सकें। यानी मेरा लिखना, बोलना, और अमल सत्य और अहिंसाको नजरमें रखकर ही हो। मैं कह सकता हूं कि जबसे मैंने अपनी माँसे दादा किया, तभीसे मैं अैसा करता आया हूं। सच पूछा जाय तो जबसे मैं समझने लगा, तभीसे मैं सत्यका पुजारी रहा हूं।

लेकिन अिसके ये मानी नहीं हैं कि सत्य और अहिंसाको मैंने पूरी तरह देख लिया है, या आज भी देखता हूं। मैं यह मानता हूं कि मुझे सत्य और अहिंसा रोज ज्यादा ज्यादा साफ तौरपर दिखाअी दे रहे हैं। अिसलिअे वर्णाश्रमको जैसा मैं आज देखता हूं, वैसा ही मैंने अुसे हमेशा देखा है, यह नहीं कहा जा सकता। मैंने अैसा कहा है कि वर्ण और आश्रम हिन्दू* धर्मकी देन है। आज भी मैं अिस कहनेपर कायम हूं।

* हिन्दू नाम दूसरोंका दिया हुआ है। जो धर्म हिन्दूधर्मके नामसे पहचाना जाता है, अुसका नाम मानवधर्म है; यानी मनुष्य मात्रका धर्म। अिस धर्मकी हमेशा खोज होती है। वह अनन्त है। वह वेदमें या मनुस्मृतिमें नहीं है। वह तो मानवके हृदयमें है। और जैसे जैसे मानव संस्कारी बनता जाता है, वैसे वैसे अुसके हृदयमें वह धर्म जागता है।

मेरी मान्यता या अकीदेके न तो वर्ण रहे और न आश्रम। ये दोनों होने चाहियें धर्म। अैसा कह सकते हैं कि अिनमें आश्रम तो गायब ही हो गया है। वर्ण सिर्फ अहंकार या ग़रूरकी शकलमें देखनेमें आता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होनेका दावा ही अहंकार है। जहाँ धर्म हो, वहाँ अहंकारका क्या काम? शूद्रकी तो गिनती ही कहां है? शूद्र यानी नीच! और अतिशूद्र या अछूत यानी नीचसे भी नीच! अिसे धर्म नहीं, अधर्म कहना चाहिये।

गीताके चार वर्ण आज कहां हैं? वर्णसे जाति अलग चीज़ है। जातियाँ बेशुमार हैं। मैं नहीं जानता कि जातियोंके लिअे गीतामें या दूसरी किताबोंमें कोअी आधार है। गीतामें चार वर्ण बताये हैं और वे गुण और कर्मके आधार पर। चार तो अुदाहरणके तौरपर हैं। अिसलिअे चारसे ज्यादा भी कह सकते हैं और कम भी। आज तो अेक ही वर्ण है और वह शूद्रका कहिये या अतिशूद्रका — हरिजनका — अछूतका। अिसमें मुझे कोअी शक नहीं कि यह बात सही है। यह बात सब हिन्दुओंको समझा सकूँ, तो हिन्दू जातिमें होनेवाले सब झगड़े मिट जायँ। हिन्दू, मुसलमान वग़ैराके कौमी झगड़े भी मिट जायं और हिन्दुस्तानकी जनता दुनियामें बहुत बड़ा दर्जा पा जाय। जिस तरह अूँचनीचपन मानना धर्म नहीं, अधर्म है, अुसी तरह रंग द्वेष या काले गोरेका भेदभाव भी पाप है। अूँचनीचपन या रंग द्वेष किसी शास्त्र या मज़हबी किताबमें देखनेमें आये तो वह शास्त्र नहीं। मनुष्यको यह निश्चय करके ही शास्त्रको छूना चाहिये कि शास्त्र धर्मके खिलाफ़ कोअी बात कह ही नहीं सकता।

जातपाँतके भेदने अितनी जड़ जमा ली है कि अुसके छींटे मुसलमान, अीसाअी वग़ैरा सभी धर्मोंको लगे हैं। अितना तो सही है कि सभी धर्मोंमें थोड़ी बहुत बाड़ा बन्दी रही है। अिसपरसे मैं अिस फैसलेपर पहुँचा हूँ कि हर अिन्सानमें यह दोष मौजूद है। शुद्ध धर्मसे ही यह दोष धुल सकता है। अैसे बाड़े और अूँचनीचपन मैंने तो किसी धर्म पुस्तकमें नहीं देखे। धर्मके लिहाजसे हर अिन्सान बराबर है, — ज्यादा पढ़ा हुआ, ज्यादा बुद्धिवाला या ज्यादा धनवान

आदमी अनपढ़, मूर्ख या गरीबसे अूँचा नहीं। अगर वह संस्कारी यानी धर्मसे शुद्ध हो चुका है, तो अपनी पढ़ाअी, अपनी अकल और अपनी दौलतसे अपने बेपढ़े, अज्ञानी और गरीब भाअी बहनोंकी सेवा करेगा, और खुदने जो कुछ पाया है, अुसे अपने भाअी बहनोंको यानी दुनियाभरको देनेकी कोशिश करेगा। अगर धर्मकी यह हालत है, तो अिस अधर्मकी हालतमें खासकर और अपने दिलसे अतिशूद्र यानी नीचीसे नीची जातिका बननेमें धर्म है। अपने पासकी संपत्तिका वह मालिक नहीं, बल्कि रक्षक है। अुसे वह दुनियाके लिअे अिस्तेमाल करेगा। अपने काममें अुतना ही लेगा, जितना अुसकी मेहनतके तौरपर अुसके हिस्सेमें आयेगा। अैसा हो तो न कोअी गरीब रहे, न अमीर। अैसी व्यवस्था या निजाममें अपने आप सब धर्म बराबर समझे जायेंगे। यानी धर्मके, जातपाँतके और अमीर गरीबके भेद और झगड़े मिट जायेंगे।

यहाँ यह विचार करना भी वाजिब है। परतंत्र जातिका अेक सबसे अूँचा धर्म यह है कि मौका मिलते ही पहले अुसे अपनी गुलामीकी बेड़ियाँ तोड़ डालनी चाहियें। जो परतंत्र हैं, वे जबर्दस्ती बनाये गये अछूत हैं। फिर भले ही अुन्हें पदवियाँ दी हों, न्यायाधीश या जज बनाया हो या चपरासी बनाया हो, या वे राजा हों या रंक। जितनी ज्यादा अुपाधियाँ, अुतनी ही गुलाम राज्यमें ज्यादा गुलामी। अिस तरह आज़ादीको धर्मके साथ जोड़ने और धर्मको सर्वव्यापी शकल देनेसे पिछले पैरेमें बताअी हुअी हालत अपने आप पैदा होनी चाहिये।

यह सुन्दर हालत आज आये या कल, अिसके झगड़ेमें जो खुद धर्म पालना चाहते हैं, वे नहीं पड़ेंगे। और अगर बहुत लोग अुस धर्मको पालें, तो सिर्फ परतंत्रता ही नहीं मिटे, बल्कि आज़ादीमें भी अन्धाधुन्धी न रहे। यह सपनेका स्वराज है। अिसकी मुझे लगन है। अिसे हासिल करनेके लिअे मैं जीना चाहता हूँ, और मैं अैसी कोशिश कर रहा हूँ कि अिसका अुपाय करनेमें ही मेरी हर साँस निकले।

पढ़नेवालेको अिन विचारोंके खिलाफ़ अिस पुस्तकमें कुछ भी दिखाअी दे, तो वह अुतना सुधारकर पुस्तक पढ़े।

मेरी मेहनत बचानेके लिअे मेरे विचारोंका जिन्होंने खुलासा किया है और अिसके लिअे खूब मेहनत की है, अुन्होंने मेरे आजके विचारोंकी टिप्पणी भेजी है। श्री किशोरलालका मक़सद यह है कि अगर मैं अिस टिप्पणी पर दस्तखत कर दूँ, तो मेरा समय बच जाय। अुसमें फेरबदल करनेकी तो मुझे छूट अपने आप ही थी, मगर अुसे पढ़नेसे मैंने देखा कि अपने स्वभावके मुताबिक श्री किशोरलाल पुस्तक पढ़ गये, अुसपर अुन्होंने विचार कर लिया और मेरे मौजूदा खयालोंके गवाहके तौरपर अेक टिप्पणी तैयार कर दी। हालाँकि मैं अुसपर हस्ताक्षर नहीं कर सकता, फिर भी वह अिसके साथ प्रकाशित करना मुनासिब है। अुसमें और मेरी कुंजीमें विरोध नहीं। श्री किशोरलालकी टिप्पणी पुस्तकको ध्यानसे पढ़कर लिखी गयी है, अिसलिअे शायद पढ़नेवालेको वह सहायक हो सके। सत्यकी जय हो!

महाबलेश्वर, ३१–५–'४५

मोहनदास करमचंद गांधी

टिप्पणी

अैसा अेक सुझाव किया गया है कि गांधीजी अपने लेखोंका संग्रह फिरसे जांचकर अपने आजके विचार ही जाहिर करें और अिस तरह अुनका सुधरा हुआ संस्करण ही प्रकाशित किया जाय। मुझे यह सूचना ठीक नहीं मालूम हुअी। लेकिन अिस टिप्पणीसे शायद मामूली पढ़नेवालेको मदद मिलेगी।

यह पुस्तक 'वर्ण-व्यवस्था'के बारेमें कोअी पूरा शास्त्र या कानून नहीं। लेकिन पच्चीस सालके दरमियान गांधीजीकी भावनाओं और विचारोंका जिस तरह विकास हुआ है अुसका अितिहास है। हालाँकि गांधीजीने अकेले ही ये लेख लिखे हैं, फिर भी बहुत हद तक जैसा अुनके विचारोंका विकास हुआ है, वैसा ही हिन्दू समाजके खासे हिस्सेका विकास भी अिन लेखोंसे जाहिर होता है। जिस ढंगसे कोअी बात वे आज पेश करते हैं, अुससे ज्यादा नरम ढंगसे पेश करनेपर भी जो चीज वे हिन्दू समाजको आसानीसे न समझा सके थे, वही बात आज वे ज्यादा सख्त होनेपर भी समझा सकते हैं। यह बताता है कि अेक पीढ़ीमें हिन्दू समाजके विचारोंमें कितनी क्रांति या अिनकिलाब हुआ है। समाजका अध्ययन करनेवालेके लिअे यह साक्षी कायम रहना अच्छा ही है। दूसरे, अब भी आगे चलकर अुनके विचारोंमें फर्क न पड़े, अिसका क्या भरोसा? वे सत्यके शोधक यानी हक्के तलाश करनेवाले हैं। अिसलिअे जितनी और जैसी सचाअी अुनकी समझमें आती जाती है, वैसी ही वे लोगोंके सामने पेश करते जाते हैं और ज्यादा जाननेकी अिच्छा रखते हैं। क्या अिसीलिअे समय समयपर सब विषयोंके सब लेखोंको सुधारा जाय? यह असंभव है।

चूँकि हर लेखके नीचे तारीख दी हुअी है और अुनके आखिरी विचारोंको ही अधिक सच्चा समझनेकी चेतावनी कअी जगह दी हुअी है,

अिसलिअे बुद्धिसे काम लेनेवाले सच्चे शोधकको रास्ता भूलनेका डर नहीं हो सकता। अितना होनेपर भी अगर कोअी आदमी नये विचारको छोड़कर पुराने विरोधी विचारको पकड़े, तो समझना चाहिये कि या तो वह बुरे अिरादेसे अैसा करता है या वह अभी विचारकी अुसी सतहपर है, जहाँ गांधीजी किसी समय थे। अीमानदार शोधक गांधीजीके विचारोंका सार निकाले तो वह दूसरी बात है, जैसा 'गांधी-विचार-दोहन' में मैंने किया है।

अगर कोअी किसीके लेखोंको लापरवाहीसे पढ़े, अुसमें अिस्तेमाल किये गये शब्दोंको लिखनेवालेके मानीमें नहीं, बल्कि अपने माने हुअे अर्थमें ही समझा करे और फिर गड़बड़में पड़कर टीका करने बैठे, तो अुसका कोअी अिलाज नहीं। अैसे टीकाकार खुद ही गड़बड़में नहीं पड़ते, बल्कि असली लेखोंको न पढ़नेवाले अपने श्रोताओं और पाठकोंको भी गड़बड़में डालते हैं। अितना कह कर अुतावले पाठकको सावधान करनेकी और यह दिखानेकी गरजसे कि गांधीजीके विचारोंमें धीरे धीरे कैसे फर्क पड़ता गया है, अेक अुदाहरण देता हूँ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय वगैरा वर्णों, मोढ़, लाड वगैरा जातियों और ब्राह्मण अब्राह्मण जैसे फिरकोंकी बुनियादपर खड़ी हुअी जातियाँ — तीनों अलग अलग चीजें हैं। अिन सबके लिअे अंग्रेजी 'कास्ट' शब्द काममें लेनेसे गड़बड़ पैदा होती है। आम तौर पर गांधीजीने तीनोंके भेद अलग अलग लफ्जोंसे दिखाये हैं। किसी जगह अेक ही तरहकी परिभाषा न रखी जा सकी हो या अेकके बजाय दूसरा शब्द अिस्तेमाल हुआ हो, वहाँ बहुत करके प्रसंगसे सफाअी हो जाती है।

अब, अिन तीनमेंसे मुझे याद नहीं कि गांधीजीने जातियोंका होना अपने जमानेमें ज़रूरी या अच्छा माना हो। यह तो हो सकता है कि अुनकी बुराअी करनेकी भाषा सख्त होती गअी हो। अेक समय जातियोंको तोड़ना अुन्हें ज़रूरी मालूम होता था, लेकिन अैसा नहीं लगता था कि तोड़े बिना काम नहीं चलेगा। अब तो अुन्हें अैसा ही लगता है कि जातियोंको तोड़े बिना काम नहीं चल सकता।

ब्राह्मण-अब्राह्मण जैसे फिरके तो आजकी पेचीदा राजनीतिक हालतसे पैदा हुअे हैं। ये जातिभेदसे निकली हुअी बुराअियाँ हैं और अुससे बेजा फायदा अुठानेके लिअे बनाअी गअी आजकलकी संस्थाअें हैं। जातियोंके मिटनेसे ही ये मिट सकती हैं।

'वर्ण'के बारेमें गांधीजीके विचार मौलिक हैं। अिनका जातियोंके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं; रोटी-बेटी व्यवहारसे कोअी सरोकार नहीं। ये अूँचनीचके खयाल या रुपये पैसेकी कमीबेशीपर नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक बराबरीके अुसूलपर और अुस अुसूलपर अमल करनेके आदर्शपर बनाये गये हैं। हो सकता है कि पढ़नेवाला कल्पनाशील न हो, तो अिन विचारोंको आकाशमें अुड़ना ही समझे। आदर्शवादी जनता अुनपर अमल करनेकी कोशिश करेगी। गांधीजीके नमूनेके समाजमें विश्वविद्यालयका विद्वान् प्रोफेसर और गाँवका मुंशी, बड़ा सेनापति और छोटा-सा सिपाही, होशियार व्यापारी और अुसका गुमाश्ता, मजदूर और भंगी सब अेकसे खानदानी माने जायँगे और सबकी खानगी माली हालत बराबर होगी। अिससे अिज्जत या आमदनी बढ़ानेके लिअे अेक धंधा छोड़कर दूसरा पेशा करनेका लालच नहीं रहेगा। कोअी धंधा करनेकी लियाकत विरासतमें चली आती हो या शिक्षा और आसपासके वातावरणसे मिली हो, सौमें नव्वेसे ज्यादा बच्चोंकी लियाकत तो बापदादेका पेशा करनेकी ही होना संभव है। वह पेशा करनेसे आमदनी या अिज्जत कम न हो, तो वे फजूल ही दूसरा धंधा ढूँढना न चाहेंगे। जिस तरह आज योग्यता हो या न हो तो भी सैकड़ों विद्यार्थी युनिवर्सिटीकी डिग्रियोंके पीछे पड़ते हैं, वैसे वे बेकार कोशिश न करेंगे। गाँवोंके तेज बुद्धिवाले जवान गाँवोंको खाली करते नहीं देखे जायँगे। हो सकता है कि अिक्के दुक्के बच्चोंका झुकाव दूसरी तरफ हो। यह भी मुमकिन है कि बदलती हुअी जरूरतोंके मुताबिक अलग धंधोंके लिअे कितने ही लोगोंको प्रेरणा की जाय। गांधीजीकी कल्पनामें अिसकी मनाही नहीं है। न अुसमें आगे बढ़नेके बजाय अेक जगह बैठे रहनेकी ही गुंजायश है। जो आज ब्राह्मण माने जाते हैं, मगर ब्राह्मणका धंधा नहीं करते या जो ब्राह्मण तो माने नहीं जाते, मगर धंधा ब्राह्मणका ही करते हैं और अुसके आदर्शके माफिक अमल करते हैं,

अुन लोगोंको किस नामसे पहचाना जाय, अिस बारेमें अेक समय गांधीजीने अपने विचार जाहिर जरूर किये हैं। लेकिन यह कहा जा सकता है कि अब अुन्हें अिस बातमें कोअी दिलचस्पी नहीं रही कि किसे क्या नाम दिया जाय। तमाम पेशेवालोंके चार ही दर्जे किये जायँ या कम ज्यादा, अिस बारेमें अुन्होंने अपने विचार 'कुंजी'में बता ही दिये हैं।

कि० मशरूवाला

प्रस्तावना*

(१)

जातिके बारेमें मैंने क्या कहा है और क्या नहीं कहा, यह ढूँढ़नेके लिअे मेरे ढेरमे लेखोंकी छानबीन करनेकी निकम्मी सिरपच्चीमें न पड़कर आपने मुझे नीचे लिखे सवाल भेज दिये, सो अच्छा किया :

"१. जाति व्यवस्था या जातपाँतके बारेमें आपने जो विचार जाहिर किये हैं, अुनपर आज भी आप कायम हैं?

२. क्या आप अब भी यही मानते हैं कि जाति व्यवस्था समाजकी सबसे बढ़िया व्यवस्था है और दुनियाको अिसे अपनाना चाहिये?

३. क्या आप अब भी मानते हैं कि आज जो हजारों जातियाँ मौजूद हैं, वे सब मिट जायँगी और अेक दूसरेमें मिलकर आखिरमें सिर्फ चार वर्ण ही रह जायँगे। पिछले पच्चीस बरसमें कितनी छोटी जातियाँ गिरीं और बड़ी जातियोंमें मिल गयीं?

४. अितिहासके जमानेमें जितनी जातियाँ हमारे देखनेमें आती हैं, वे सब जन्मके आधार पर बनी और अुसमेंसे पैदा होनेवाले भेदभावपर खड़ी हुअी थीं। तो फिर जो बराबरी और भाअीचारा आप सिखाते हैं, अुसके साथ समाजके अैसे बदोबस्तका मेल बैठेगा? आप जोर देते हैं कि भंगियोंको कयामतके दिन तक पीढ़ी दर पीढ़ी झाड़ू लगानेका ही काम करना चाहिये, तो आगे चलकर अिनकी जातिका क्या होगा?

५. श्री संजाणाने 'गायकी राजनीति' के जो दोष निकाले हैं, क्या वे दरअसल सही नहीं हैं?

६. केन्द्रीय असेम्बलीमें हिन्दू कानूनमें जातपाँत दूर करनेके लिअे जो प्रस्ताव पेश किया गया है, क्या आप अुसे पसंद करेंगे?

* जातियोंके बंदोबस्तके बारेमें गांधीजीके लेखोंमेंसे कितने ही अुद्धरणोंके साथ अेक भाअीने जो सवाल भेजे थे, अुनके जवाबमें गांधीजीने जातियोंके बारेमें अपने विचार फिरसे थोड़ेमें पेश किये हैं। अुन सवालोंके जवाब अिस किताबकी भूमिका के तौरपर दिये गये हैं। — प्रकाशक

७. श्री संजाणाकी अिस रायके बारेमें आपकी क्या राय है कि 'कांग्रेस सनातनी हिन्दू संस्था है और महात्माकी छत्रछायामें जातपाँतवाले सनातनी हिन्दू धर्मकी खैरख्वाह और अुसे फिरसे अूँचा अुठानेवाली मशीन बनी है?' अगर श्री संजाणाका यह कहना सच हो तो क्या कांग्रेसके अिस दावेको ठेस नहीं पहुँचती कि कांग्रेस खालिस राष्ट्रीय संस्था है और अुसमें फिरकेबंदीकी भावना नहीं है?

८. क्या लोकशाही और लोकशाही संस्थाओंके साथ जाति व्यवस्था मेल खाती है?"

अिसपर मेरा जवाब यह है:

यह जाननेके लिअे कि मैं आज क्या मानता हूँ, मेरे सारे पिछले लेखोंको देखनेकी ज़रूरत नहीं, क्योंकि मेरी आजकी मान्यता ही सही है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दूधर्ममें जाति आज जिस शकलमें मौजूद है, वह अेक अैसी बेहूदा चीज है, जिसका वक्त गुजर गया है। सच्चे धर्मकी बढ़तीमें अिससे रुकावट ही होगी और अगर हिन्दूधर्म और हिन्दुस्तानको जीना है और दिन दिन तरक्की करना है, तो जातपाँत मिटनी ही चाहिये। अैसा करनेका अुपाय यह है कि सब हिन्दुओंको अपना भंगी आप बन जाना चाहिये और पीढ़ी दर पीढ़ीके भंगी कहलानेवालोंको अपना भाअी समझना चाहिये।

मैंने 'भंगी' अिसलिअे लिखा है कि जीनेकी सबसे नीची सीढ़ी पर वही खड़ा है। अिसमें आपके सब सवालोंका जवाब आ जाता है और अिससे ज्यादा कहनेकी मेरे लिअे जरूरत नहीं रहती। यह साफ है कि सवाल पूछनेवालेने मेरे लेखोंको पढ़नेकी तकलीफ नहीं अुठाअी। . . . सभी जानते हैं कि कांग्रेस न शुरूसे सनातनी हिन्दू संस्था थी और न आज ही है। यह अलग अलग विचार रखनेवालोंकी अेक लोकशाही संस्था है और मेरी देखभालके कारण ज्यादा लोकशाही बनती जा रही है।

अप्रैल, १९४५

मोहनदास करमचंद गांधी

(२)

वर्ण-धर्म पर मैंने आज तक जो कुछ लिखा है, यह छोटीसी किताब अुसका अेक संग्रह है। वह कअी महीनों पहले छप चुकी थी, लेकिन प्रस्तावना न होनेसे वैसे ही पड़ी रही। मैंने प्रस्तावना लिख देना मंजूर किया था। पर हरिजन यात्राके कारण आज तक लिख ही न सका। अलग अलग मौकोंपर लिखा हुआ सारा अेक बार पढ़नेके बाद प्रस्तावना लिखना चाहता था। यह अिच्छा तो आज भी पूरी नहीं कर सकता। शायद अिसीमें भला है। मुझे आगे पीछेका सम्बन्ध अटूट रखनेका लालच नहीं। सचाअीको नजरके सामने रखकर आज जो कुछ मैं मानता हूँ, वही कह देना ठीक है। प्रकाशक भी यही चाहते हैं। यह देखना पढ़नेवालेका काम है कि आगे पीछेका सम्बन्ध बना रहता है या नहीं। जहाँ अुसमें पढ़ने-वालेको मेल बैठता न दीखे, वहाँ मेरे मनकी हालत जाननेके लिअे अुसे पिछले लेखोंको छोड़कर अिस प्रस्तावनामें लिखा हुआ सही मानना चाहिये। मैं सब कुछ जाननेका दावा नहीं करता। मेरा दावा सचाअी पर डटे रहनेका और जिस वक्त जो सच मालूम हो अुसीके मुताबिक जहाँ तक हो सके अमल करनेका है। अिससे जान या अनजानमें मुझमें फेर-बदल या तरक्की, जो कुछ कहिये, हो सकती है। जहाँ जानबूझकर तब्दीली सूझती है, वहाँ तो मैं अुसे लिख ही देता हूँ। लेकिन बारीक तब्दीलियाँ तो अनजानमें ही हुआ करती हैं। अुनकी याददाश्त कहाँसे रखी जाय? वह चकोर या तेज आँखवाला पाठक ही रख सकता है।

लोग मामूली व्यवहारमें वर्ण-धर्म समासका अिस्तेमाल थोड़ा ही करते हैं। वर्णाश्रम-धर्म समास काममें लानेका रिवाज लोगोंमें ज्यादा है। अिस छोटी-सी किताबमें आश्रम यानी अुम्रके चार हिस्सोंके बारेमें थोड़ा लिखा है। ज्यादा तो वर्ण यानी समाजके चार हिस्सों पर ही लिखा है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्मका सच्चा नाम वर्णाश्रम-धर्म है। हिन्दू नाम परदेशी मुसाफिरोंका रखा हुआ जान पड़ता है। और अुसका सम्बन्ध भूगोलके साथ है। हमने जो धर्म पाला है, अुसे अगर कोअी खास और मतलब भरा नाम दिया जा सकता हो, तो जरूर वह

नाम वर्णाश्रम-धर्म है। यह कहनेसे कि हिन्दुओंका धर्म आर्य धर्म है, धर्मके बारेमें कोअी सूचना नहीं मिलती। अिसका मतलब तो अितना ही हुआ कि हिन्दू यानी सिन्धुके पूर्वमें रहनेवाले लोग अपनेको आर्य मानते हैं और दूसरोंको अनार्य; या वेदका धर्म माननेवाले खुदको आर्य और दूसरोंको अनार्य समझते हैं। अैसे नाममें मुझे तो दोष भी दिखाअी देता है। वर्णाश्रम-धर्मसे धर्मकी विलक्षणता या गैर मामूलीपन जाहिर होता है। यह विचार ठीक हो या न हो, अितना तो सब मानेंगे कि वर्णाश्रमको हिन्दू धर्ममें बड़ी जगह दी गअी है। स्मृतियोंके जमानेकी अेक भी धर्म पुस्तक अैसी नहीं देखनेमें आती, जिसमें वर्णाश्रम धर्मको बहुत बड़ा स्थान न दिया गया हो। वर्णाश्रमकी जड़ तो वेदमें ही है। अिसलिअे कोअी हिन्दू वर्णाश्रमकी अुपेक्षा तो नहीं कर सकता। अिस प्रथाको समझ कर अुसमें कोअी दोष दिखे, तो अुसे जानबूझ कर छोड़ देना चाहिये; अगर यह प्रथा धर्मकी निर्दोष विशेषता हो, तो अिसकी परवरिश करनी चाहिये। वर्णाश्रममेंसे आश्रम धर्मका तो नाम और अमल दोनों मिट गये, अैसा कहा जा सकता है। हिन्दू धर्ममें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ये चार आश्रम माने गये हैं, और ये हर हिन्दूके लिअे हैं। लेकिन ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थका पालन शायद ही कोअी करता होगा। नामका संन्यास थोड़ी मात्रामें भले ही पाला जाता हो। मगर आश्रम अेक दूसरेके साथ अितने मिले जुले हैं कि अेकके बिना दूसरा पाला ही नहीं जा सकता। जिसका आज सब पालन करते हैं, वह तो गृहस्थका काम है — गृहस्थका धर्म नहीं। पर याद रखना चाहिये कि गृहस्थका काम यानी आबादी बढ़ानेका काम तो दुनियामें सभी कोअी करते हैं। धर्ममें मर्यादा, विवेक वगैरा होते हैं। अिसलिअे जो दम्पत्ति मर्यादा और विवेकके साथ रहते हैं, वे गृहस्थका धर्म पालते हैं। जो मर्यादाके बिना चलते हैं, वे फर्ज अदा करनेवाले नहीं, बल्कि स्वेच्छाचरी हैं; और आजकल गृहस्थका काम तो ज्यादातर मनमानी और व्यभिचारको बढ़ाता है। व्यभिचारी या स्वेच्छाचारी जीवनके बाद वानप्रस्थ और संन्यास नामुमकिन समझना चाहिये। अिससे यही मानना चाहिये कि आश्रम धर्म तो मिट ही गया। अुस धर्मको फिरसे अूँचा अुठाना जरूरी

है। यह किस तरह हो सकता है, अिसका विचार करना अिस प्रस्तावनाके क्षेत्रके बाहर है।

अब वर्ण-धर्मपर आयें। असलमें वर्ण चार माने गये हैं। अैसा कह सकते हैं कि आज तो वर्ण बेशुमार हैं। फिर भी लोग अपनेको चार वर्णोंमें गिना सकते हैं। कोअी अपनेको ब्राह्मण कहता है, कोअी क्षत्रिय और कोअी वैश्य। अपनेको शूद्र बतानेमें सबको शर्म आती है। शूद्र अपना परिचय अुपजातियोंसे ही देते हैं। तीन वर्णोंमें भी अुपजातियाँ हैं, मगर अुन्हें अपनेको ब्राह्मण वगैरा बतानेमें शर्म नहीं आती। अिस तरह वर्ण नामको रह गये हैं।

लेकिन अिन्सान अपनेको कोअी विशेषण लगा ले, तो अुसीसे वह अुसके लायक नहीं बन जाता। काले रंगका आदमी अपना रंग लाल कहे तो लाल हो नहीं सकता। अिसी तरह अपनेको ब्राह्मण बताकर कोअी ब्राह्मण बन या रह नहीं सकता। ब्राह्मण होनेकी आखिरी कसौटीपर तो वह तब खरा अुतर सकता है, जब ब्राह्मणके गुण अपनेमें मूर्तिमंत कर ले। अिस तरह सोचनेपर हम देखेंगे कि वर्ण-धर्म भी मिट गया है। व्यवहारमें हम 'वर्ण' नाम रख सकते हों तो यह समझा जा सकता है कि हम सब शूद्र हैं। लेकिन असलमें तो हम शूद्र भी नहीं माने जा सकते, क्योंकि धर्मशास्त्रमें तो वर्णको धर्म माना है। अिसलिअे शूद्र वर्ण भी धर्म है। और धर्म तो अपनी मरजीसे मंजूर किया जाता है। अुसके पालनेमें शर्मकी तो गुंजायश ही नहीं। धर्मके तौरपर शूद्रपनका अमल करनेवाले कितने नजर आयेंगे? दिनोंके फेरसे हम शूद्रपनको पहुँच गये हैं। कोअी यह कहे कि वर्णोंके करनेके काम तो होते ही रहते हैं, अिसलिअे वर्णधर्म नहीं मिटा। वे कहेंगे कि जो आदमी जिस वर्णका काम करता है, वह अुसी वर्णका गिना जायगा। मेरे खयालसे यह वर्णधर्म नहीं। जहाँ काममें मिलावट हो और सब अपनी अपनी मरजीसे, जो अच्छा लगे वही करें, तो मैं अुसे वर्णका संकर या दोगलापन हुआ मानूँगा। वर्णका जन्मके साथ अनिवार्य नहीं तो बहुत नजदीकका सम्बन्ध है। जो जिस वर्णमें पैदा हो, वह अुस वर्णके काम धर्मभावनाके साथ करे, तो वह वर्णधर्म पालता है। अिस तरह धर्म पालनेवाले आज

अुँगलियोंपर गिने जा सकते हैं । वर्ण-धर्मके पालनेमें स्वार्थकी गुंजायश नहीं, या वह गौण है । वर्ण-धर्ममें तो परमार्थ ही हो सकता है, या फिर अुसका मुख्य स्थान हो । ब्राह्मण ब्रह्मको जानने और बतानेमें ही वक्त लगाये और यह माने कि अुसका गुजर भगवान चलाता है । क्षत्रिय प्रजाको पालनेका फर्ज अदा करे और अुसके बदलेमें गुजारेके लिअे अेक हदके भीतर खर्च ले । वैश्य जनताकी भलाअीके लिअे खेती, गायकी परवरिश और व्यापार करे; जो रुपया मिले अुसमेंसे सच्चा वैश्य अपने गुजरके लायक रखकर बाकीको लोगोंकी भलाअीमें लगा दे । अिसी तरह शूद्र सेवा करे तो धर्म समझकर करे ।

मामूली तौरपर वर्णका फैसला जन्मसे किया जाता है । अेक हद तक कर्मसे भी किया जाता है । ब्राह्मणका लड़का ब्राह्मणके घर पैदा होकर ब्राह्मण तो कहलायेगा, मगर बड़ा होनेपर अुसमें ब्राह्मणके लक्षण या गुण न दिखें, तो वह ब्राह्मण नहीं माना जायगा । वह तो पतित हुआ । अिससे अुलटा, जो दूसरे वर्णमें पैदा होकर ब्राह्मणके लक्षण साफ साफ और रोज बताया करेगा, वह भले ही खुदको ब्राह्मण न कहे तो भी ब्राह्मण माननेके लायक होगा । दुनिया अुसे ब्राह्मण ही मानेगी ।

अिस धर्मके मुताबिक अगर दुनिया चले तो सब जगह सन्तोष फैले, झूठी होड़ मिटे, अीर्ष्या दूर हो, कोअी भूखों न मरे, जन्म मरण बराबर रहें और बीमारियाँ जाती रहें ।

लेकिन वर्ण अगर धर्म बन जाय और अधिकार न रहे, तो वर्ण वर्णके बीच भेद न रहे, और सब वर्ण बराबर हो जायँ । बहुत समयसे हिन्दू धर्ममें धर्मके नामपर अूँचनीचके भेद घुस गये हैं । यह वर्ण-धर्मका टेढ़ामेढ़ा रूप है, भयंकर रूप है । पुरखोंने कठिन तपस्यासे जिस बड़े कानूनको ढूँढ़ निकाला था और जिसपर भरसक अमल किया था, अुसका अनर्थ करके आज हमने अुसे दुनियाके लिअे हँसीकी चीज बना दिया है । नतीजा यह है कि आज हिन्दुओंमें भी अैसा फिरका निकल पड़ा है जो वर्ण-व्यवस्थाका नाश करनेपर तुला हुआ है, क्योंकि वह मानता है कि वर्णसे हिन्दू जाति पामाल हुअी है । और आज वर्णके नामपर जो हालत पाअी जाती है, अुसमें तो हिन्दू जातिका नाश ही है ।

आज रोटी-बेटीके व्यवहारकी हदबन्दीमें वर्ण-धर्मका पालन समाया हुआ है। ब्राह्मण ब्राह्मणके साथ और अुसमें भी भला हो तो अपनी अुपजातिके साथ ही रोटी-बेटी व्यवहार रखेगा और अुसीमें अपने धर्मकी अितिश्री मानेगा। अुत्तरमें कहावत है कि 'आठ कनौजिये नौ चूल्हे।' यह है धर्मपालन! सब अेक दूसरेके छूनेसे नापाक हो जाते हैं। अिसी तरह खाने पीनेके बारेमें जो विवेक रखा जाता है, अुसे भी वर्ण-धर्मका जुज़ मानकर ब्राह्मणपन या क्षत्रियपन वगैराका खात्मा अिसीमें समझा जाता है कि फलाँ चीज खाअी जाय या न खाअी जाय। फिर क्या अचरज कि दुनिया अैसे धर्मको दुतकारती है और कितने ही समझदार हिन्दू भी अिस अव्यवस्थाको मिटानेपर तुले हैं!

यहाँ मेरे कहनेका मतलब यह बिलकुल नहीं कि रोटी-बेटी व्यवहारकी मर्यादा या खानपानके विवेककी गुंजायश ही नहीं। मैं खुद हर किसीके साथ सब कुछ खानेका धर्म न मानता हूँ, न पालता हूँ। हर किसीके साथ बेटाबेटी लेना-देना मनमानी समझता हूँ। जिस तरह हर व्यवहारमें कड़ी मर्यादा या संयम जरूरी है, अुसी तरह अिसमें भी जरूरी है, मेरा अैसा मानना है कि खाने पीनेका शास्त्र है। मनुष्य सब कुछ खानेवाला प्राणी नहीं है। अुसके खानेकी चीजोंकी भी हद है। लेकिन रोटी-बेटी व्यवहार और खानपानकी तमीज़पर वर्ण-धर्मका दारमदार नहीं है। वर्ण-धर्म अेक अलग ही शास्त्र है। मैं यह कल्पना कर सकता हूँ कि अेक वर्णकी दूसरे वर्णमें शादी करनेमें कोअी बुराअी नहीं है। मैं मानता हूँ कि सफाअी वगैराके नियमोंका पालते हुअे और खान-पानमें विवेक करते हुअे सब वर्णके लोग अेक पंगतमें बैठकर खायँ तो कोअी दोष नहीं। पुराने जमानेमें रोटी-बेटी व्यवहार अिस तरह होनेके बहुतसे सबूत हैं। रोटी-बेटी व्यवहारको वर्ण-धर्मके साथ जोड़ देनेमें हिन्दूधर्मका भारी नुकसान पहुँचा है।

यह सही है कि वर्ण-धर्मकी खोज हिन्दूधर्ममें हुअी है, मगर अिससे कोअी यह न माने कि ये नियम हिन्दुओंको ही लागू होते हैं और दूसरोंको नहीं होते। हर धर्ममें कोअी न कोअी विशेषता होती ही है। मगर यह विशेषता अुसूलके तौर पर हो तो वह सब जगह

फैल जानी चाहिये । दुनिया भले ही आज अुसे न माने । अुतनी ही वह घाटेमें रहेगी । वर्ण-धर्मके बारेमें मेरा यह मानना है । अिसे मैं अेक बड़ी भारी खोज मानता हूँ । आज नहीं, तो कल दुनियाको अुसे मानना ही होगा ।

अिस अुसूलको थोड़ेमें मैं अिस तरह रखता हूँ : जो आदमी जिस खानदानमें पैदा हो अुसका धन्धा, अगर वह नीतिके खिलाफ न हो तो, धर्मभावसे करे और अुसे करते हुअे जो आमदनी हो, अुसमेंसे मामूली गुज़रके लायक रखकर बाकीको सार्वजनिक यानी सबकी भलाअीमें लगाये ।

चार वर्णोंको शरीरके चार अंगोंकी अुपमा वेदमें दी गअी है । शरीरके अंगोंमें जैसे यह भेद नहीं होता कि अेक अूँच और दूसरा नीच है; और अंगोंमें समझ हो और अूँचनीचका भेद वे रखें, तो शरीररूपी राष्ट्रके टुकड़े टुकड़े हो जायँ । अिसी तरह जगत्का राष्ट्र भी अपने वर्ण-रूपी चार अंगोंके बीच अूँचनीचका भेदभाव रखे तो टुकड़े टुकड़े हो जाय । आज जगतमें अूँचनीचके भेद हैं, और जगत्में जो आपसी झगड़ा चल रहा है, अुसके वे खास कारण हैं । अिस बातके समझनेमें मामूली आदमीको भी मुश्किल न होनी चाहिये कि यह लड़ाअी वर्ण-धर्म पर चलनेसे मिट सकती है । वर्ण-धर्ममें हर वर्णको अपना अपना काम धर्म समझकर करना है । पेट भरना तो अिसका थोड़ा-सा फल है । यह मिले या न मिले तो भी चारों वर्णोंको अपने अपने धर्ममें लगा रहना है । अिस वर्ण-धर्मपर अमल हो, तो आजकल दुनियामें जो अूँचनीचपन मौजूद है, अुसकी जगह बराबरीका बोलबाला रहे, सारे धन्धे अिज्जत और कीमत दोनोंमें अेक-से समझे जायँ, और वजीर, वकील, डाक्टर, व्यापारी, चमार, बढ़अी, भंगी और ब्राह्मण बराबर बराबर कमायें । जहाँ वर्ण-धर्म पाला जाता हो वहाँ अैसी दया अुपजानेवाली हालत हो ही नहीं सकती, न होनी ही चाहिये कि तीन वर्ण ज्यादा कमायें और शूद्र थोड़ा कमाये, या क्षत्रिय महलोंमें चढ़कर बैठें, ब्राह्मण भिखारी यानी झोंपड़ेमें रहे, वैश्य बड़ी बड़ी हवेलियां बनायें और शूद्र बिना घरबारका गुलाम बनकर रहे ।

मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि जिस वक्त वर्णाश्रम-धर्म खोज निकाला गया था, अुस वक्त भी हिन्दू समाज अिस आदर्श तक पहुँच गया था। मुझे मालूम नहीं कि किस समय वर्ण-धर्म अिस अूँचे दर्जे तक पहुँचा था। मगर मैं अितना कह सकता हूँ कि वर्णधर्मका आदर्श यही हो सकता है। समझदारके लिअे अिस धर्म पर चलना सहल है। अैसा वर्ण-धर्म सिर्फ हिन्दुओंके लिअे ही नहीं, बल्कि सारी दुनियामें जो समझ सकते हैं अुन सबके लिअे है।

अिस व्यवस्थामें जिसके पास जो जायदाद होगी, अुसका वह सारी जनताके लिअे रखवाला होगा। वह अपनेको कभी अुसका मालिक नहीं मानेगा। राजा अपने महलका या प्रजासे जो कर वसूल करता है अुसका मालिक नहीं, बल्कि रखवाला है। वह अपने लिअे पेटभर लेकर बाकीको प्रजाके लिअे खर्च करनेका बँधा हुआ है। यानी प्रजासे वह जितना लेगा अुसमें अपनी होशियारीसे बढ़ती करके अुसी प्रजाको किसी न किसी तरह लौटा देगा। यही बात वैश्यकी है। शूद्रका तो कहना ही क्या? और अगर किसी भी तरह मुकाबिला किया जा सकता है तो शूद्र सिर्फ धर्म समझकर सेवा ही करता है। जिसके पास कोअी जायदाद कभी होनेवाली ही नहीं और जिसे मालिक बननेका लालच तक नहीं, वह हजार नमस्कारके लायक है और सबसे अूँचा है। धर्मपर चलनेवाला शूद्र अपने बारेमें अैसा न समझेगा, लेकिन देवता तो अुसपर फूल बरसायेंगे। यह वाक्य आजकलके सेवा करनेवालोंके बारेमें भले ही शोभा न दे। वे चप्पा भर जमीनके मालिक न होकर भी मालिकी चाहते हों यानी वे अपने शूद्रपनको सुख देनेवाले धर्मके तौरपर नहीं देखते हों, बल्कि भोगकी अिच्छा पूरी न होनेसे दुखदायी समझते हों। अिसीलिअे मैंने तो आदर्श शूद्रको प्रणाम किया है, और दुनियासे कहता हूँ कि वह भी अुसके सामने सिर झुकाये।

लेकिन यह शूद्रका धर्म अुस पर लादा नहीं जा सकता। तीन वर्ण अपनेको प्रजाके सेवक मानते हों और जो जायदाद अुनके पास रहे अुसके सबकी भलाअीके लिअे अपनेको रखवाले साबित कर सकते हों, अुन्हींके मुँहसे शूद्र धर्मकी बड़ाअी करना अच्छा लग सकता है। आज तो जहाँ

तीन वर्ण सिर्फ नामके रह गये हैं, अपना धर्म पालनेकी किसीको सूझती नहीं और अपनेको अूँचे वर्णका मानकर शूद्रको हलके वर्णका समझते हैं, वहाँ अिसमें कोअी अचरजकी बात भी नहीं, दुःखकी बात भी नहीं कि शूद्र अुनसे अीर्ष्या करें और जो सम्पत्ति वे लेकर बैठ गये हैं अुसमें हिस्सा बँटाना चाहें। वर्णको धर्मके तौरपर बताकर शोधकोंने अैसा सुझाया है कि वर्ण-धर्मपर अमल करनेमें जबरदस्तीकी बू तक नहीं आनी चाहिये। वर्ण-धर्मको पालनेसे ही दुनियाका काम चल सकता है। अिस धर्मका पालन करनेसे ही जगतका छुटकारा है। और अिस धर्मपर अमल करानेके लिअे हर वर्णको खुद अुसपर अमल करते करते मर जाना है; दूसरोंसे जबरदस्ती अमल नहीं कराना है।

जहाँ होड़ बहुत अच्छी चीज समझी जाती है, रुपया कमाना बहुत बड़ा काम माना जाता है, जहाँ सब जैसा जीमें आये वैसा धन्धा करनेकी अपने लिअे छूट मानते हैं और जहाँ सब जिस मालो हालतमें हैं अुससे ज्यादा अच्छी कर लेना धर्म समझते हैं, अैसे जमानेमें यह कहना कि वर्ण-धर्म जगतका बहुत बड़ा नियम है हँसीके लायक बात मालूम देती होगी। अिसको फिरसे अूँचा अुठानेकी बात करना अिससे भी ज्यादा दिल्लगी मानी जा सकती है। फिर भी मुझे पक्का भरोसा है कि आजकलकी भाषामें कहें तो यही सच्चा साम्यवाद है। गीताकी भाषामें यह बराबरीका 'धर्म' है, पर 'वाद' नहीं। अिस धर्मपर थोड़ा अमल करनेसे भी अमल करनेवालेको और दुनियाको सुख मिलता है।

यहाँ यह कहना जरूरी है कि वर्ण-धर्मका यह लाजमी अंग नहीं कि वर्ण चार ही होने चाहियें; सिर्फ अितना ही कहना काफी है कि सब अपने अपने वर्ण-धर्मका अमल करके अुसीमेंसे रोजी निकाल लें। वर्ण-धर्मको फिरसे अुठानेका विचार करते हुअे शायद अैसा मालूम पड़े कि वर्ण चार नहीं बल्कि ज्यादा या कम होने चाहियें, तो मुझे खुदको अचंभा नहीं होगा।

वर्धा, ता० २३–९–'३४

मोहनदास करमचंद गांधी

वर्ण-व्यवस्था

पहला हिस्सा

वर्ण और अुसके धर्म

वर्ण - व्यवस्था

दक्खिनकी अपनी यात्राके दरमियान वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मण-अब्राह्मण वग़ैरा जात-पाँतके बारेमें मैंने जो खयाल ज़ाहिर किये थे, अुनकी वजहसे मुझे बहुतसे .गुस्सेसे भरे हुअे खत मिल रहे हैं। अुन खतोंको मैं यहाँ नहीं छापता, क्योंकि अुनमें सिवाय गालियाँ देनेके शायद ही और कुछ होता है। जिनमें गालियाँ नहीं होतीं अुनमें भी कोअी दलील नहीं रहती। चिढ़ तो कोअी दलील नहीं कही जा सकती।

फिर भी कुछ पत्रोंसे अुठनेवाली दलीलोंका जवाब देना ज़रूरी है। कुछ लोग कहते हैं कि जात-पाँत क़ायम रखनेसे हिन्दुस्तानका सत्यानाश होगा, क्योंकि जात-पाँतके भेदने ही हिन्दुस्तानको .गुलामीमें डुबोया है। मेरी नज़रमें हमारी आजकी गिरी हुअी हालतकी जड़में हमारी जात-पाँतका भेद नहीं है। हमारे गलेमें .गुलामी अिसलिअे आयी कि हमने अपने लालचके बस होकर राष्ट्रीय गुण बढ़ानेकी तरफ़ लापरवाही रखी। मैं तो अुलटे यह मानता हूँ कि वर्ण-व्यवस्थाने अेक हदतक हिन्दू-समाजको टुकड़े-टुकड़े होनेसे बचाया है।

लेकिन दूसरी संस्थाओंके साथ-साथ ही अिस संस्थामें भी अति या ज़्यादतीने घुसकर भारी नुक़सान किया है। वर्ण-व्यवस्थामें बुनियादी तौरपर सोची गअी समाजकी चौमुखी रचना या बनावट ही मुझे तो असली, .कुदरती और ज़रूरी चीज़ दीखती है। बेशुमार जातियों और अुपजातियोंसे कभी-कभी कुछ आसानी हुअी होगी, लेकिन अिसमें शक नहीं कि ज़्यादातर तो जातियोंसे अड़चन ही पैदा होती है। अैसी अुपजातियाँ जितनी जल्दी अेक हो जायँ अुतना ही अुसमें समाजका भला है। अुपजातियोंमें अिस तरहकी दिखाअी न देनेवाली जोड़-फोड़ और नअी रचना शुरूसे होती आ रही है, और होती ही रहेगी। लोकमत और जनताके नैतिक दबावका असर यह काम

कर लेनेके लिअे काफ़ी है। लेकिन असली वर्ण-विभागको ही जड़से नाबूद करनेकी किसी भी कोशिशका तो मैं विरोध ही करूँगा।

वर्ण-विभागमें भेदभाव, असमानता या अूँच-नीचपन तो किसी तरहका है ही नहीं; और मद्रास या दक्षिण-जैसे प्रान्तों या सूबोंमें, जहाँ अैसे भेद पैदा होने लगे हैं, वहाँ अुन्हें ज़रूर रोकना चाहिअे। लेकिन अिसके अैसे कभी-कभी होनेवाले दुरुपयोग या बेजा अिस्तेमालके कारण सारी व्यवस्था या निज़ामको मौतकी सज़ा नहीं दी जा सकती। अिसमें आसानीसे सुधार हो सकता है। हिन्दुस्तानमें और सारी दुनियामें आज देखते-देखते जो लोक-युग फैल रहा है अुसके असरसे हिन्दू जातियोंमें भी अूँच-नीचके ख़याल अपने आप मिट जायँगे। सिर्फ़ बाहरी अंगोंको तोड़ देनेसे लोक-युग नहीं फैलता। यह कोअी गणितका सवाल नहीं कि सरलतासे हिसाब बैठ जाय। अिसकी गुत्थियाँ सुलझानेके लिअे दिलोंमें तब्दीली होनी चाहिअे, समाजकी वृत्ति या तबीयतका झुकाव बदलना चाहिअे। अगर राष्ट्र-भावना या क़ौमी ख़यालके फैलावमें जात-पाँत अेक रुकावट हो, तो हिन्दुस्तानमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, अीसाअी और यहूदी वग़ैरा धर्मोंका अेक साथ होना भी रुकावट ही है। लोक-सत्ता या जमहूरियत और राष्ट्रीयता या क़ौमियतकी भावना तो आपसके भाअीचारेपर ही पनपती है। और आज अेक अीसाअी या मुसलमानको सगा माँ-जाया भाअी ही माननेमें मुझे तो किसी तरहकी अड़चन मालूम नहीं होती। हमें यह कभी न भूलना चाहिअे कि जिस हिन्दू-धर्मने वर्ण-व्यवस्था पैदा की है, अुसी हिन्दू-धर्मने मनुष्यकी सबसे अूँची भलाअी साधनेके लिअे हमें सिर्फ़ अिन्सानोंके तअीं ही नहीं, बल्कि जीवमात्रके तअी अपनापन साधनेका आदर्श भी दिया है।

अेक भाअी सुझाते हैं कि हमें अपनी वर्ण-व्यवस्था तोड़कर युरोपकी वर्ण-व्यवस्था मंज़ूर कर लेनी चाहिअे। यानी मेरे ख़यालसे वे यह कहना चाहते हैं कि हमारी वर्ण-व्यवस्थामें पीढ़ी-दर-पीढ़ीकी जो भावना है, सिर्फ़ अुसीको आज हमें नष्ट करना है। मुझे तो लगता है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ीका अुसूल हमेशासे है और रहेगा। अुसे बदलनेकी कोशिशसे सदा गड़बड़ हुअी है और होगी ही। अेक ब्राह्मणको अुम्रभर ब्राह्मण ही माननेमें मैं तो बहुत फ़ायदा देखता हूँ। अगर वह ब्राह्मणको सोहनेवाले तरीक़े पर न चले,

तो वह अपने आप सच्चे ब्राह्मणको मिलनेवाली अिज़्ज़त खो बैठेगा। यह साफ़ है कि हम रोज़-रोज़ व्यक्तियोंके हर कामकी अच्छाअी-बुराअीका हिसाब निकालकर अुसकी रूसे हर वक़्त व्यक्तियोंको सज़ा या अिनाम देने बैठेंगे, और रोज़-रोज़ ब्राह्मणको शूद्रकी और शूद्रको ब्राह्मणकी पदवी देने लगेंगे तो मुश्किलोंका पार न रहेगा। जो हिन्दू पुनर्जन्मको माननेवाले हैं — और हरअेक हिन्दूको पुनर्जन्मका माननेवाला होना ही चाहिअे — अुन्हें यही मानना पड़ेगा कि क़ुदरत किसी भी तरहकी भूल किये बिना बुरे काम करनेवाले ब्राह्मणको अिन्सानी तरक़्क़ीके निचले दरजेपर डालेगी, और अिसी तरह अिस जन्ममें ब्राह्मणकी ज़िन्दगी बितानेवालेको ब्राह्मणके दरजेपर पहुँचाये बिना न रहेगी।

अब रोटी-बेटी-व्यवहारके बारेमें जाँच करें। मैं मानता हूँ कि अेक राष्ट्रीयता या क़ौमियतके भावको फैलानेकी ख़ातिर अेक थालीमें खाना या चाहे जिसके साथ शादी करनेकी छूट लेना ज़रूरी नहीं। मैं यह नहीं मानता कि किसी कितने ही आज़ाद ज़मानेमें या स्वतंत्र राज्य-विधानमें समाजके सभी लोगोंमें खाने-पीने या शादी-ब्याहके बारेमें अेक-सा आचार-व्यवहार होगा। समाजके जुदा-जुदा वर्गों या तबक़ोंमें आचार-व्यवहार अलग-अलग तरहके होंगे ही। अिस विविधताके बीचमें ही हमें हमेशा अेकता ढूँढ़नी और क़ायम करनी होगी। और मैं यह कहनेके लिअे तैयार नहीं कि जो भी कोअी आदमी सब किसीके साथ खाने-पीनेमें हर्ज़ समझता है, वह पाप करता है। हिन्दुओंमें भाअी-भाअीके बच्चे अेक-दूसरेके साथ ब्याहे नहीं जाते। अिससे अुनके आपसके प्रेममें खलल नहीं पड़ता। अुलटे अुनका यह रिवाज अुनके आपसी सम्बन्धको और भी पाक और साफ़ बनाता है। वैष्णवोंमें मैंने बहुत-सी माँओंको देखा है, जो मर्यादा पालती हैं और घरकी रसोअीमें नहीं खातीं या घरके आम मटकेका पानी नहीं पीतीं। अिससे अुनमें ख़ुदग़रजी या अुद्धताअी आती या अुनका प्रेम और ममता घटती नहीं देखी गअी। ये बातें सिर्फ़ संयम और तालीमसे सम्बन्ध रखती हैं। ख़ुद अिनमें कोअी ख़ास दोष नहीं है। अिसमें अति या ज़्यादती घुस जाय, तो वह ज़रूर नुक़सानदेह हो। और तिसपर भी अगर अूँचेपनके घमण्डसे वैसा किया जाय, तो वह संयम, संयम न रहकर दर असल मनमानी ही बन जाता

है और अिस कारण घातक साबित होता है। मगर ज़माना जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, और नअी-नअी ज़रूरतें और बातें पैदा होती जाती हैं, वैसे-वैसे रोटी-बेटी-व्यवहारके बारेमें भी बहुत ही सावधानीके साथ हमें सुधार और फेरफार अवश्य करने पड़ेंगे।

अिस तरह मैं हिन्दू वर्ण-व्यवस्थाकी हिमायत करता हूँ, हमेशा करता आया हूँ; और फिर भी मैं कहता हूँ कि हिन्दुओंमें जड़ जमाकर बैठी हुअी अछूतपनकी भावना मानव-जातिके लिअे घोर-से-घोर अपमान रूप है। अिस भावनाकी जड़में संयम नहीं, बल्कि अूँचपनकी अुद्धत भावना ही है। अिस भावनाने अपनी किसी भी तरहकी क़ाबिलीयत नहीं बताअी; अुलटे जो लोग किसी भी बातमें हमसे अलग नहीं, और जो कअी तरहसे समाजकी भारी सेवा कर रहे हैं, अैसे अिन्सानोंके अेक बहुत बड़े समूह या गिरोहको हमने अिन्सानोंमेंसे निकाल डालनेका घोर पाप किया है। अिस पापमेंसे हिन्दू-धर्म जितनी जल्दी बचकर निकल जाय, अुतना ही अुसका बड़ापन और मान है। अिस हीन भावनाको क़ायम रखनेके पक्षमें अेक भी दलील मुझे अभीतक नहीं मिली। और अैसी पापी प्रथाकी हिमायत करनेवाले शास्त्रोंके वचनोंको — जिनके सही होनेमें शक है — रद्द करनेमें मुझे ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं होती। अलबत्ता, प्रौढ़ बुद्धि और आत्माकी आवाज़के खिलाफ़ जानेवाली शास्त्रकी किसी भी हिदायतके आगे सिर झुकानेसे मैं अिन्कार करूँगा। शास्त्रका सबूत या प्रमाण जब बुद्धिके पाये पर खड़ा होता है तब वह कमज़ोरोंके लिअे मददगार साबित होता है और अुन्हें अूँचा अुठाता है। लेकिन जब वह आत्माकी गहराअीमेंसे आनेवाली पुकारसे पवित्र हुअी बुद्धिके तक़ाज़ेको संतोष देनेसे अिन्कार करता है, और अुसकी जगह ही रोक देना चाहता है, तब वह अिन्सानको नीचे गिराता है।

ता० १२–१२–'२०

२

वर्णसंकर या वर्णाश्रम ?

अेक पढ़ी-लिखी बहन लिखती हैं —

"सफ़रमें अेक भाअीका मेरा साथ हो गया। अुन्होंने बरतेजमें हुअी राजपूत-परिषद्‌को भेजे हुअे आपके सन्देसेकी* तरफ़ मेरा ध्यान खींचा। पढ़कर मनके भीतर बहुत दिनोंसे दबा हुआ विरोध अुछल आया। जो सोच-विचार करे, वही मनुष्य है। अिसलिअे मुझे आशा है कि मेरे विचारको आप सह लेंगे, और वह आपके विचारसे निराला हो, तो भी अुसपर ध्यान देंगे। सन् १९२० में आश्रम और अुसका बुनाअी-घर देखकर मनमें ये विचार आये थे। बादमें जाते रहे, मगर कभी-कभी दिखाअी दे जाते। पर अभी थोड़े दिन हुअे, ये विचार मेरे मनमें हमेशाके लिअे घर कर बैठे हैं, और राजपूत-परिषद्‌को भेजा गया आपका सन्देसा अिनके अुभाड़का आख़िरी निमित्त बना है।

"जहाँ सारा स्टेशन अेक सिरेसे दूसरे सिरेतक फ़ौजी ढंगसे कन्धेपर लटकती हुअी तलवारोंवाले स्वयंसेवकोंसे भरा हुआ था, जहाँका सारा वातावरण क्षत्रिय जातिकी बहादुरी और दाक्षिण्यकी यादसे गूँजता था, वहाँ अुनको चरखेको तलवारोंकी जगह देनेकी आपकी सलाह क्या अीसाअी पादरियों-जैसी ही बिलकुल बेमौक़ा न थी ? क्या आपको पुराने ज़मानेके ऋषियोंकी तरह ब्राह्मणको ज़्यादा सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रियको आदर्श क्षत्रिय और वैश्यको सच्चा वैश्य बननेकी सलाह न देनी चाहिअे ? ब्राह्मणकी निशानी पोथी या क़लम है। राजपूतकी तलवार, और वैश्यकी चरखा या हल है। आप भले ही अपनेको जुलाहा या किसान कहलानेमें अभिमान या फ़ख्र समझें। अैसा करनेमें आप अपने जातिधर्मके क़ुदरती झुकावकी ही वफ़ादारी करते हैं। लेकिन आपके-जैसा वर्णाश्रम माननेवाला हिन्दू ब्राह्मणों और क्षत्रियोंसे अपने क़ुदरती जातिधर्म छुड़ाकर वैश्य धर्म मनवानेका किसलिअे अितना आग्रह करता है ? क्या वैश्यवृत्ति अख्तियार किये बग़ैर आज क्षत्रिय ग़रीबोंका बचाव और सेवा कर ही नहीं सकते ?

"भारतवर्षके बड़े आदमियोंने तो हमेशा हर शख़्सको अुसके स्वभावके माफ़िक अपना फ़र्ज़ अदा करना ही सिखाया है। आपने ही पहले-पहल अिन सब फ़र्ज़ोंको ताक़में रखकर सारे राष्ट्रको अेक वैश्यवृत्ति ही अख्तियार करनेका अुपदेश या नसीहत देना शुरू किया है। वैश्यधर्मको आप भले ही अूँचा अुठायें

* देखिये 'क्षत्रिय धर्म' शीर्षक लेख, प्रकरण १८ वाँ।

लेकिन कृपा करके ब्राह्मण-क्षत्रियोंको पीछे न धकेलिये। आप अपनी जातिको भले ही आध्यात्मिक बनायें, मगर दूसरी जातिवालोंको अपनी विभूतिके ज़ोरसे लुभाकर जुलाहे और पिंजारे बना बनाकर दुनयावी या सांसारिक किसलिअे बना रहे हैं? मेरी रायमें तो अपने आश्रमके विनोबा और बालकोबाको आपने जिस किस्मका आध्यात्मिक जुलाहा बनाया है, अुसके बजाय वे शुद्ध ब्राह्मण रहे होते और अपनी मेधाका पूरी तरह विकास करते, तो वे राष्ट्रकी ज्यादा मगीन सेवा करते।"

यहाँ मैंने सारा खत नहीं दिया है, पर अुसका सार दे दिया है। बाक़ीके हिस्सेमें अूपर जो कुछ दिया है अुसकी छान-बीन ही है। लिखनेवाली शिक्षित बहन जन्मसे हिन्दू हैं, और मेरी तरह वे भी हिन्दू होनेका दावा करती हैं। कातने को मैंने सम्प्रदायों या फ़िरक़ोंके धर्मों से अुम्दा धर्म माना है। मैंने यह आशा रखी थी कि महज़ अिसीलिअे विद्वान् मित्र अिसका कोअी ग़लत अर्थ नहीं करेंगे। पर वैसा होना बदा न था। अूपरवाली विदुषी बहिन बताती हैं कि चरखेका विरोध करनेवाली वे अकेली नहीं हैं। अिसलिअे मुझे अुनकी दलीलोंकी जाँच धीरजके साथ करनी होगी।

सन् १९०४से आज तकके अखबार चलानेके अपने अनुभव या तजरबेसे मैंने देखा है कि अखबारोंके सम्पादकोंके पास आनेवाले संवादोंमें ज्यादातर टीका या नुक़ताचीनी विरोधी या मुख़ालिफ़की बातके बारेमें पूरी जानकारी न होनेसे ही होती है। अिस अुदाहरणमें अिन बहनको समझना चाहिअे था कि चरखेका सँदेसा मैंने अकेले अिस देशके हिन्दुओंको ही नहीं दिया है। यह सँदेसा तो स्त्री, पुरुष, मुसलमान, पारसी, अीसाअी, यहूदी, सिक्ख और अिसी तरह किसी भी अपवादके बिना अपनेको हिन्दुस्तानी कहलानेवाले हिन्दुस्तानके हरअेक बाशिन्देके लिअे है। अितनी बात ये बहन याद रखतीं, तो मैं मानता हूँ कि अुनकी टीका दूसरी ही तरह लिखी जाती। तब वे देखतीं कि मैंने तो हिन्दुस्तानके हाथमें अेक अैसी चीज़ रखी है, जो किसीके धर्मके आड़े नहीं आती, बल्कि अुलटे जिस हदतक अुसे अपनाया जाय, अुस हदतक वह अुस-अुस धर्मको और हिन्दू-धर्मके अुस-अुस वर्ण या जातिको अुजला करने वाली है। अिसीलिअे मेरा दावा है कि मेरा तरीक़ा वर्णको बिगाड़नेवाला नहीं, बल्कि अुसे शुद्ध करनेवाला है। मैं किसीसे स्वधर्म या बाप-दादोंका धन्धा छोड़नेको नहीं कहता। मैं तो यह कहता हूँ कि सब अपने-

अपने .कुदरती पेशेमें चरखा चलाना और जोड़ दें। काठियावाड़के राजपूत अिस बातको जानते थे। अुन्होंने मुझसे पूछा था कि क्या मैं अुन्हें अपनी तलवारें रख देनेके लिअे कहता हूँ? मैंने कहा — हरगिज़ नहीं। अुलटे मैंने तो अुनसे यह कहा कि जबतक आप अपनी ताक़तपर भरोसा रखते हैं तबतक आपमें से हरअेकको कभी धोखा न देनेवाली तलवार अवश्य बाँधनी चाहिअे। अलबत्ता, मैंने अुनसे यह भी कहा कि मेरी कल्पनाका आदर्श क्षत्रिय तो वह है जो तलवार चलाये बिना बचाने का काम करे और बिना मारे अपनी जगह सँभालता हुआ मरे। तलवार तो कोअी छीन भी सकता है; लेकिन बिना मारे मार सहकर मर जानेवालेकी सूरमाअीको कौन छीन सकता है?

पर यह तो दूसरी बात हुअी। अूपरके सवालके जवाबमें तो यही कहूँगा कि राजपूतोंको कमज़ोरोंका बचाव करनेका अपना धन्धा हरगिज़ न छोड़ना चाहिअे। अिसी तरह मैं यह नहीं चाहता कि ब्राह्मण भी विद्या या अिल्म देनेका पेशा छोड़ दें। मैं तो अितना ही कहता हूँ कि कताअीरूपी यज्ञसे वे ज़्यादा अच्छे गुरु बनेंगे। विनोबा और बालकोबाने कातनेवाले, बुननेवाले, और पाखाने साफ़ करनेवाले बनना पसन्द करके अपने ब्राह्मणपनका गौरव या दरजा बढ़ाया है। वे आज अच्छे-से-अच्छे ब्राह्मण बन गये हैं। अुनका ज्ञान बहुत संगीन हो गया है। ब्राह्मण वह है, जिसने अीश्वरको पहचान लिया। मेरे अिन दोनों साथियोंने चरखेको अपनाकर हिन्दुस्तानके लाखों भूखोंके साथ जितनी हमदर्दी और अपनापन बढ़ाया है अुतने ही वे आज अीश्वरके अधिक नज़दीक हैं। अीश्वरका ज्ञान ग्रंथों या किताबोंके पढ़नेसे नहीं होता। वह तो अपनी आत्माकी गहराअीमें, भीतर अनुभव किया जाता है। पुस्तकें तो ज़्यादा-से-ज़्यादा यह कर सकती हैं कि कभी कुछ मदद कर दें। वैसे अक्सर तो वे रुकावट ही साबित होती हैं। अेक बड़े भारी विद्वान् ब्राह्मणको अीश्वरका यथार्थ ज्ञान पानेके लिअे अेक धर्मात्मा क़साअीके पास जाना पड़ा था!

और फिर यह वर्णाश्रम भी क्या है? यह कोअी लोहेकी दीवारोंसे बनाया गया तंत्र नहीं। मेरी नज़रमें तो यह अेक शास्त्रीय सचाअीको मंज़ूर करना है, फिर भले ही ये मंज़ूर करनेवाले जानते हों या न जानते हों। अिसका यह मतलब नहीं कि ब्राह्मण सिर्फ़ पढ़ने-पढ़ानेका काम करनेके लिअे

है। अिसका मतलब यही है कि अुसमें यह वृत्ति प्रधान होनी चाहिअे। जैसे, अगर कोअी ब्राह्मण शरीर-श्रमसे या .खुद मेहनत करनेसे क़तअी अिन्कार ही करे, तो सभी अुसे बेवक़ूफ़ कहेंगे। पुराने ऋषि जंगलोंमें रहते, अपने हाथों लकड़ी काटते, अुसके गट्ठर बाँधकर सिरपर लाते, ढोर चराते और हथियार भी अुठाते थे। यह सब होनेपर भी अुनका मुख्य धन्धा अीश्वरी सचाअीकी तलाश करना ही था। अिसी तरह अपढ़ क्षत्रिय, फिर वह कितना ही बड़ा तलवार चलानेवाला क्यों न हो, निकम्मा गिना जाता था। यही बात वैश्योंकी है। अगर वे अितना अध्यात्मज्ञान या रूहानी अिल्म भी न रखते हों कि जीवनके बारेमें अच्छी लगनेवाली और भला करनेवाली चीज़ोंमें भेद कैसे किया जाय, तो वे समाजके सत्वको चूस लेनेवाले राक्षस ही माने जाने चाहिअें। हम देखते हैं कि आजके वैश्य अैसे ही बन गये हैं, फिर भले ही वे पच्छिमके हों या पूरबके। गीताकी भाषामें तो 'अपनी ही खातिर जीनेवाले ये पापी लोग राक्षसी नरक भोगनेके लायक़' हैं। चरखेकी योजना तो चारों वर्णोंको — हरअेक हिन्दुस्तानीको अुसके अपने धर्मके प्रति जाग्रत करनेके लिअे है। अिसके ज़रिये हरअेक मनुष्यको अपना-अपना स्वधर्म या फ़र्ज़ ज़्यादा अच्छी तरह अदा करनेकी प्रेरणा मिलेगी। जब जहाज़ शान्त पानीपर चलता होता है तब अुसपर बैठे लोग अपने-अपने कामोंमें मस्त और मशगूल रहते हैं। पर जब बेड़ा तूफ़ानमें फँसकर डगमगाने लगता है और डूबनेकी नौबत आ जाती है, तब तो अेक बचावके ही ज़रूरी काममें जहाज़परके अेक-अेक आदमीको जीतोड़ मेहनत करनी पड़ती है।

हम यह भी न भूलें कि सारी दुनियाके साथ-साथ हिन्दुस्तान भी आज जगत्व्यापी या आलम-गीर बेपारकी शकलमें मौतके साँपकी घातक लपेटमें फँसा हुआ है। आज तराज़ू-बाटवाले सिपाहियोंकी जाति हमपर राज करनेका दावा कर रही है। अिस लपेटमेंसे छूटनेके लिअे आज हिन्दुस्तानको अपने अच्छे-से-अच्छे ब्राह्मणोंकी सारी बुद्धिमत्ता या अक़्लमन्दी खर्च कर देनी होगी। अिस तरह हिन्दुस्तानके अेक-अेक बुद्धिमान आदमीकी और सिपाहीकी ताक़त आज हिन्दुस्तानकी बेपारी-भूख मिटानेके काम लगा देनी पड़ेगी। और अपना यह धर्म वे पूरी तरह पाल सकें, अिसके लिअे आज अुन्हें कातना सीखनेकी और नियमसे कातनेकी ज़रूरत है।

अिसके सिवाय, जिन्हें अीमानदारीसे अपनी रोटी कमानेकी अिच्छा या ख़्वाहिश है अुन्हें भी रोज़गारके तौरपर बुनाअीका धन्धा करनेकी सलाह देनेमें मुझे ज़रा भी हिचकिचाहट न होगी। साथ ही, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय या अिसी तरह के दूसरे लोग आज बाप-दादेका पेशा छोड़कर धनके पीछे पागल हो गये हैं अुन्हें भी मैं जुलाहेका यह अीमानदार और बेग़रज़ (अुनके लिअे) धन्धा भेंट करता हूँ, और हाथका करघा जो थोड़ी-सी रोज़ी दे अुसीपर सब्र करके अपने मूल धर्मकी तरफ़ लौटनेका निमन्त्रण या दावत देता हूँ। जिस तरह खाना, सोना वग़ैरा चीज़ें सभी वर्ण और सभी धर्मके माननेवालोंके लिअे अेक-सी हैं, अुसी तरह, जबतक स्वार्थी तृष्णा और अुससे पैदा होनेवाली कंगाली हममें घर किये बैठी है, तबतक चरखा अेक-अेक वर्ण, क़ौम और धर्मके लिअे अेक-सा ज़रूरी रहनेवाला ही है।

अिस तरह मेरा काम वर्ण-संकर करनेका — यानी और ज़्यादा गड़बड़ पैदा करनेका — नहीं, बल्कि वर्णाश्रमकी स्थापना करनेका यानी शुद्धिके कामको ज़्यादा मज़बूत बनानेका है।

ता० २०-७-'२४

३

वर्णावर्णीकी सड़न

नीचेकी हक़ीक़तोंसे भरा पत्र मुझे मैमनसिंह ज़िला वैश्य-सभाकी तरफ़से मिला था :—

"बंगालके हिन्दुओंके दो ख़ास हिस्से किये जा सकते हैं — (१) जिनके हाथका पानी पिया जाता है, और (२) जिनके हाथका पानी नहीं पिया जाता। पहलेमें ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ और नवशाखावाले हैं; दूसरेमें वैश्य-शाह, सुवर्ण-वणिक (सोनी), सूत्रधार (बढ़अी), जोगी (जुलाहे), शुण्डी (कलाल), माली, भोअी, धोपा (धोबी), मोची, कापालिक, नामशूद्र, वग़ैरा हैं। अिनमेंसे कुछको मर्दुमशुमारीमें दलित जातिका माना गया है।

"पहले भागकी पहली तीन जातियाँ हिन्दुओंमें ख़ास हैं — कुल मालिक हैं — और वे दूसरे भागमें बताअी हुअी जातोंको हिक़ारतकी निगाहसे देखती

हैं; अितना ही नहीं, बल्कि वे अुन्हें कअी तरहसे दुःख देते हैं। अुनकी मन्दिरोंमें मनाअी है, अुनके विद्यार्थियोंको बोर्डिंगोंमें रहने और खानेकी तकलीफ़ें हैं, और अुन्हें होटलों और हलवाअियोंकी दुकानोंमें दूर-दूर रखा जाता है, वग़ैरा-वग़ैरा।

"बंगालमें अछूतपन दूर करनेवालोंका काम करनेका तरीक़ा ठीक न होनेसे वे आगे नहीं बढ़ सकते। सन् १९२१ की मर्दुमशुमारीके अनुसार बंगालके हिन्दू २,०९,४०,००० से ज़्यादा हैं। अिनमेंसे १७ फीसदी ब्राह्मण, १६ फीसदी कायस्थ और १० फीसदी वैश्य मिलकर कुल २८,०९,००० होते हैं।

"अब पूरबी बंगाल और सिलहटकी वैश्य-शाह जाति, जो बेपारमें सबसे आगे बढ़ी हुअी है, अकेली ही ३,६०,००० यानी बंगालके कुल हिन्दुओंका ३॥ फ़ीसदी है। अुनमें फ़ी हज़ार ३४२ लिख-पढ़ सकते हैं, जब कि वैद्योंमें ६६२, ब्राह्मणोंमें ४८४, कायस्थोंमें ४१३, सुवर्ण-वणिकोंमें ३८३, और गंधर्व-वणिकोंमें फ़ी हज़ार ३४४ पढ़े-लिखोंकी तादाद है। दूसरे सब आचरणीय वर्णोंमें, यानी जिनके हाथका पानी चलता है अुनमें, पढ़े-लिखोंकी तादाद बहुत कम है, और अनाचरणीयों यानी जिनके हाथका पानी नहीं चलता अुनकी तो बात ही क्या करना?

"हमारी जाति कॉलेज, हाअीस्कूल, दवाखाने, बावड़ी और पक्के कुअें, वग़ैरा कअी संस्थायें चलाती है। अिसी तरह अिनके अलावा दूसरी तरहके दान करनेमें भी वह पीछे नहीं है। आचार-विचार और मेहमानदारीमें भी किसी दूसरी जातिसे कम नहीं। स्त्री-शिक्षामें भी पिछड़ी हुअी नहीं। अितना होनेपर भी हम हिन्दू-समाजके दायरेसे बाहर हैं; फिर, हम लोग किसी भी राष्ट्रीय कामसे कभी अलग नहीं रहे, फिर भी आजतक कभी हिन्दूजातिने हमारा वाजिब दरजा नहीं माना। अगर समाजकी पाबन्दियां हमारे सरसे न हों, तो हम आजके मुक़ाबले कितने ज़्यादा अुपयोगी बन जायें!

"शुण्डियों या कलालोंसे हम बिलकुल जुदा हैं, पर ये लोग भी अपनेको 'शाह' कहते हैं, अिससे तंगदिल हिन्दू हमें भी अुन्हींके साथ मिला देते हैं। हमने तो पूरी खोज-बीन करके साबित कर दिया है कि हमारी जाति अुत्तरसे और पश्चिमी हिन्दुस्तानसे आयी हुअी है, और जब ब्राह्मणोंके धर्मका फिरसे ज़ोर बढ़ा तब हम बौद्ध असरको पूरी तरह छोड़ नहीं सके थे, अिसीलिअे हिन्दू-समाजमें हमें वाजिब जगह नहीं मिली और हमसे नफ़रत की गयी।"

हो सकता है कि अूपरकी हक़ीक़त कुछ बढ़ा-चढ़ाकर लिखी गअी हो, लेकिन मैंने अिसे यहाँ यह दिखानेको ही दिया है कि अूँच-नीचके भेदकी सड़न हिन्दू-धर्मके मर्मको किस तरह कुतरकर खा रही है। जिन्होंने यह

हक़ीक़त भेजी है अुन्हें वे लोग धिक्कारते हैं, जो अुनसे अूँचे कहलाते हैं, और ये .खुद अपनेको अुन लोगोंसे अूँचा और अलग समझते हैं, जो अिनसे ज़्यादा नीचे माने जाते हैं। अिस तरह नीचे समझे जानेवाले 'अछूतों'में भी अूँच-नीचका यह भेद फैला हुआ है। कच्छके सफ़रमें मैंने देखा कि हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंकी तरह कच्छमें भी अछूतोंमें अूँचे और नीचेका फ़र्क़ है, और अूँची जातिके अछूत नीची जातिके अछूतोंको छूनेसे भी अिन्कार करते हैं. यही नहीं, बल्कि नीच जातिके अछूतोंके बच्चे जिस पाठशालामें जाते हों अुस पाठशालामें वे अपने बच्चोंको भेजनेसे साफ़ अिन्कार करते हैं। जहाँ यह हालत हो वहाँ आपसमें रोटी-बेटी-व्यवहारकी बात ही क्या की जाय? वर्णके फ़र्क़का जो भयंकर ग़लत अर्थ किया गया है, अुसीके ये नमूने हैं। और अेक तबक़ा दूसरे तबक़ेसे अपनेको अूँचा माननेमें जो अभिमान या फ़ख्र करता है अुस विरोध मुक़ाबिला करनेके लिअे मैं अपनेको भंगी कहलानेमें आनन्द अनुभव करता हूँ। क्योंकि मेरी जानकारीमें भंगीसे नीची कोअी जाति नहीं। बेचारा भंगी ही समाजमें कोढ़ी है, जिसे सब दुर-दुराते हैं, और फिर भी समाजकी तन्दुरुस्तीके लिअे यानी समाजको जीता रखनेके लिअे दूसरे किसी भी तबक़ेसे ज़्यादा ज़रूरी तबक़ा अिस भंगीका ही है।

जिनकी तरफ़से मुझे अूपरकी हक़ीक़त मिली है अुनके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। पर जिनकी तक़दीरमें अुनसे भी ज़्यादा नीचे समझे जाना लिखा है अुन्हें वे क्यों अपनेसे नीचा समझें? अैसे लोगोंको भी अपने दायरेमें लेकर, जो लाभ दूसरोंको नहीं मिलते, वे .खुद अपने लिअे भी अुन्हें न लेने चाहिअें। हिन्दू-धर्ममेंसे .कुदरतके खिलाफ़ छोटे-बड़ेपनका यह धब्बा मिटाना हो, तो अुसकी जड़ अुखाड़नेके लिअे हममेंसे कितनों ही को .खूनका पानी करना पड़ेगा। मेरे ख़यालसे जो अूँचे होनेका दावा करते हैं, वे अिस दावेसे ही अुसके लिअे नालायक़ ठहरते हैं। सच्चा और .कुदरती अूँचापन तो दावा किये बिना ही मिल जाता है। जो सचमुच बड़ा है अुसे बिना चाहे ही सब बड़ा कहते हैं। और वह .खुद बड़ा होनेसे जो अिन्कार करता है, सो दिखावेके लिअे या झूठी नम्रतासे नहीं, बल्कि अिस शुद्ध ज्ञानके कारण करता है कि जो अपनेको नीचा मानता है अुसके

अन्दर रहनेवाली आत्मा और .खुद अपने भीतरकी आत्मामें कोअी भेद नहीं। सृष्टि या मखलूक़के प्राणिमात्रकी तात्त्विक या अुसूली अेकता और अभेदको जो जानता है अुसके लिअे अूँच-नीचके भावकी गुंजाअिश ही नहीं। जीवन अेक कर्मक्षेत्र या काम करनेकी जगह है, यह अधिकार और हुकूमतका संचय नहीं। जिस धर्मका पाया अूँच-नीचके भेदकी प्रथापर है वह बिलकुल मिटकर ही रहेगा। वर्ण-धर्मके मैं यह मानी नहीं करता। मैं वर्ण-धर्मको मानता हूँ, क्योंकि मेरे खयालमें वह अलग-अलग पेशेके लोगोंके कर्त्तव्य या फ़र्ज़ तय करता है।

अिस धर्मके मुताबिक़ ब्राह्मण वही है जो सब वर्णोंका सेवक है— शूद्रों और अछूतोंका भी सेवक है। चारों वर्णोंकी सेवाके लिअे वह अपना सब-कुछ .कुरबान कर देता है, और प्राणिमात्रकी दयापर जीता है। ओहदों, हुकूमत और अधिकारका दावा करनेवाला क्षत्रिय नहीं। क्षत्रिय तो वही है जो समाजके बचाव और समाजकी अिज़्ज़तके लिअे अपनी हस्तीको मिटा देता है। अपने ही लिअे कमानेवाला और अपनी ही खातिर धन अिकट्ठा करनेवाला वैश्य नहीं, चोर है। हिन्दू-धर्मके बारेमें मेरा जो खयाल है अुसके अनुसार पाँचवाँ या अछूत नामका कोअी वर्ण है ही नहीं। अछूत कहलानेवाले लोग दूसरे शूद्रोंकी बराबरीके अधिकारवाले समाज-सेवक हैं। मैं मानता हूँ कि वर्ण-धर्म समाजकी अूँची-से-अूँची भलाअीके लिअे सोची गयी बढ़िया-से-बढ़िया प्रथा है। आज तो हम अुसका ढोंग ही देखते हैं; और अगर वर्ण-धर्मको क़ायम रखना हो, तो हिन्दुओंको चाहिअे कि वर्ण-धर्मकी अिस जूठनका नाश करके वे अुसकी पुरानी शानको फिरसे क़ायम करें।

ता० ८–११–'२५

४

मेरा वर्णाश्रम-धर्म

[ब्राह्मण-अब्राह्मणके झगड़ेको ध्यानमें रखकर गांधीजीने कडलोरमें जो भाषण दिया था, वही श्री० महादेवभाअीके साप्ताहिक पत्रसे लेकर नीचे दिया है।]

मैं आपके अिन झगड़ोंको समझ ही नहीं सकता। पर अुन्हें समझे बिना मैं ज्ञानकी अेक बात आपसे कह दूँ। ब्राह्मण तो त्याग और तपको समझनेवाले ही ठहरे। आपको जगहों और ओहदोंके लिअे लड़नेकी क्या ज़रूरत? फिर आप अब्राह्मण अितने ज़्यादा हैं कि सारे ब्राह्मण आपकी मुट्ठीमें समा जायँ। तो नाहक़ किसलिअे झगड़ा करते हैं? आप वर्णाश्रम-धर्मके खिलाफ़ लड़ रहे हैं। लेकिन ख़बरदार, जो चीज़ हिन्दू-धर्मकी जड़ है, कहीं अुसीको आप खोद न डालें। वर्णाश्रमने आज जो राक्षसी रूप धर लिया है अुसका सामना आप डटकर कीजिये, अुसमें मैं आपके साथ ही खड़ा हूँ। लेकिन अगर आप ब्राह्मणोंकी बुराअियोंका सामना करनेके बदले ब्राह्मणधर्मकी जड़में चोट करेंगे, तो आप हिन्दू नहीं रहेंगे, और अेक नया अछूतपन पैदा कर लेंगे। वर्णाश्रम-धर्मके मानी हैं भगवद्‌गीतामें बताया हुआ वर्णाश्रण-धर्म — समाजकी सेवाके अलग-अलग कामोंपर बनाये हुअे महा नियमोंका धर्म। अिस धर्मका खाने-पीने और शादी-ब्याहके साथ कोअी सरोकार नहीं। मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे पाक और साफ़ ख़ुराक किसी भी धर्मवालेके और अछूतके भी हाथसे लेनेकी छुट्टी देता है। मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे अपने आश्रममें अछूत भाअियोंके साथ अेक पंगतमें बैठकर खानेसे नहीं रोकता। मेरा वर्णाश्रम-धर्म मुझे अेक अछूत लड़कीको अपनी बेटी बनाकर रखनेसे मना नहीं करता। अगर अिस वर्णाश्रम-धर्मको ही आप अुखाड़ना चाहते हैं, तो आप हिन्दू-धर्मको अुखाड़ फेंकेंगे।

[लेकिन जब बात असी है, तो फिर ब्राह्मण अपनेको अब्राह्मणोंसे अूँचा क्यों मानते हैं? क्या आप मंज़ूर करते हैं कि ब्राह्मण सबसे अच्छे हैं? अिसका जवाब गांधीजीने अब्राह्मण नेताओंके साथकी बातचीतमें और तंजोरकी सभामें विस्तारसे दिया।]

अगर आपको यह भ्रम हो कि मेरे खयालमें मनुष्य कोअी खास अच्छाअी लेकर पैदा होता है, तो आप अुसे अपने दिलसे निकाल डालिये। मैं तो अद्वैत या वहदतके बड़े भारी अुसूलको माननेवाला हूँ, और अद्वैतका मेरा अर्थ अूँच-नीचके फ़र्कको मंज़ूर करनेसे अिन्कार करता है। हर अिन्सान — चाहे वह हिन्दुस्तानमें पैदा हो या अिंग्लैण्ड-अमेरिकामें — बराबरीके दरजेपर पैदा होता है। मैं अिस सिद्धान्तका क़ायल हूँ। अिसीलिअे हमपर राज करनेवाले अपनेको हमसे अूँचा मनवानेकी जो कोशिश करते हैं, अुसके खिलाफ़ मैं लड़ रहा हूँ; दक्खिनी अफ्रीकामें अूँच-नीचके भेदके खिलाफ़ मैं पग-पगपर लड़ा हूँ; और अिसी वजहसे मैं अपनेको भंगी, जुलाहा और मज़दूर कहलानेमें शान समझता हूँ। ब्राह्मण भी जब अपने अूँचपनका घमण्ड करते हैं, तो मैं अुनसे भी लड़ता हूँ। मुझे तो यह नामर्दीकी निशानी लगती है कि आदमी आदमीको अपनेसे नीचा समझे। जो सबसे अच्छा होनेका दावा करते हैं वे अपनी नालायक़ी साबित करते हैं।

और अिस सबके बावजूद वर्णाश्रम-धर्मके बारेमें मेरी श्रद्धा या अक़ीदत अटल है। अिसमें जो अटल नियम समाया है अुसे कोअी झूठा कर ही नहीं सकता। अुस नियमको मानकर अिन्सान अपने खास गुणोंको खोज निकालनेके लिअे तैयार होता है। वर्ण-धर्ममें नम्रता है। बराबरीका मतलब यह नहीं कि मनुष्य अलग-अलग गुण लेकर पैदा नहीं हो। जैसे आदमी अपने बाप-दादेकी शकल लेकर पैदा होता है, वैसे ही वह ख़ास गुण लेकर भी जनमता है। अिस चीज़को मंज़ूर करके हम अपनी मर्यादाको मान लेते हैं, और अिसकी वजहसे परमार्थ साधनेके लिअे सबको अेक-सा मौक़ा मिलता है। यह सच्चा वर्णाश्रम धर्म है। यह वह वर्णाश्रम नहीं जो आज चल रहा है, बल्कि आप कह सकते हैं कि यह मेरा अपना है। हाँ, आजकी अुसकी भद्दी शकलका विरोध आप भले ही कीजिये। पर जो मुझे मंज़ूर है वह आपको भी मंज़ूर हो, तो फिर मेरा आपसे कोअी झगड़ा नहीं रहता।

यह नियम सारी दुनियाको मानना ही होगा। जानमें या अनजानमें सभी धर्मोंवाले अिस नियमको मानते हैं। और जबतक आप अिस नियमको अखण्ड रखकर अपनी लड़ाअी लड़ेंगे तबतक जीत आपकी ही होगी।

यानी अब्राह्मण ब्राह्मणको सुधारनेकी कोशिश भले करे, पर नाश करनेका प्रयत्न न करे। जो ब्राह्मण अपना धर्म भूलकर लालची बनता है वह ब्राह्मण मिट जाता है। पर जो ब्राह्मण कंजूस न बनकर अुदार रहता है, जो अपने ज्ञानका फ़ायदा दुनियाको पहुँचाता है, जो अपनी सुगंध फैलाता है और नम्रताकी मूर्त्ति बनकर रहता है, वह ख़ुद अच्छाअीका दावा न करे, तो भी मेरा माथा अुसके आगे अपने आप झुक जायगा।"

ता० २८-९-'२७

५

अूँचे और नीचे

[तिरुपुरमें लोग गांधीजीके साथ खादी पैदा करनेकी चर्चा करनेके बदले गांधीजीके वर्ण-धर्म-सम्बन्धी विचारों और अछूतपनके विचारोंके बारेमें ज्यादा मशग़ूल थे। नौजवान यह जानना चाहते थे कि वर्ण-धर्मको कायम रखकर गांधीजी अूँच-नीचके भेद किस तरह टालना चाहते हैं। अिस सवालपर बहस करते-करते अेक दिन सांझ पड़ गअी। आख़िर गांधीजीने अुन्हें समझाना छोड़कर अुनके दिलपर असर करनेवाली कुछ बातें कहीं —
म० ह० दे०]

"मैं आपको यह कैसे समझाअूँ कि अूँच-नीचका भेद नहीं रहता? मैं आपसे कहता हूँ कि जैसे सीता व्यभिचारिणीसे अूँची नहीं थी, वैसे ब्राह्मण शूद्रसे अूँचा नहीं। क्या आप मानते हैं कि सीता अूँची नहीं थी?"

"ना, नहीं मानते। अैसा भी कहीं हो सकता है?"

"हो सकता है। सीताके अपने मनमें अूँचेपनका भाव नहीं था। सीताजीको अपनी पवित्रताका ख़याल तक नहीं था, घमण्ड तो होता ही कहाँसे? और घमण्डके बिना वे दूसरी स्त्रीको अपनेसे नीची कैसे समझतीं? हिमालय बादलोंके साथ बातें करता है, मगर अुसे अपनी अूँचाअीका सपनेमें भी ख़याल नहीं। वह तो अपनी गहरी नम्रतामें ही मगन है। अगर अुसे घमण्ड हो तो अुसका चूरा-चूरा हो जाय। अिसी तरह वर्णका अर्थ अूँच-नीच दिखलानेवाला माप हो जाय, तो वर्ण अेक गलेकी फाँसी ही बन जाय। मैक्समूलरने हिन्दू संस्कृतिको समझा था। अुन्होंने लिखा है —
"हिन्दुस्तानने जीवनको कर्त्तव्यरूपमें ही देखा है, जब कि दूसरे देशोंने

कर्त्तव्य और भोगको मिला दिया है"। वर्णका मतलब है हरअेकको अपने-अपने बड़ोंकी तरफ़से मिला हुआ जीवन-कर्त्तव्य या ज़िन्दगीका फ़र्ज़।

"पच्छिममें जब लोग आम जनताकी हालत सुधारनेकी बात करते हैं तो कहते हैं कि अिन लोगोंकी रहन-सहनका माप अूँचा करो। हम अिस तरहकी बात नहीं कर सकते, क्योंकि जहाँ अपना-अपना माप अपने अन्दर ही मौजूद है वहाँ बाहरवाला कैसे अुसे अूँचा कर सकता है? हम तो हरअेकके लिअे अपना फ़र्ज़ समझने और दिन-दिन प्रभुके नज़दीक पहुँचनेका मौक़ा बढ़ा सकते हैं।

"आप तो आज अिस सारे कर्त्तव्य-वृक्षकी जड़ अुखाड़ने बैठे हैं। मैं मानता हूँ कि अिस पेड़के कअी डाल-पत्ते सड़े हुअे हैं। अुन सबको हमें काट डालना चाहिअे, पर जड़में कुल्हाड़ी चलाना तो हरगिज़ ज़रूरी नहीं। आप जड़में कुल्हाड़ी चलाने बैठे हैं, अिसलिअे आप अनाड़ी माली हैं। आपको अपने बाग़की क़दर नहीं। जिस पेड़ने आपको पोसा और छाया दी है, अुस पेड़को आप काटना चाहते हैं!

"लेकिन साथ ही यह समझ रखिये कि पेड़को काटनेकी आपकी कोशिश फ़िज़ूल है, क्योंकि जो सच्चे ब्राह्मण हैं वे तुम्हारी कुल्हाड़ीकी चोटें सहा करेंगे, और लहू झरते घावपर घाव सहकर खड़े रहेंगे। यह बात सच है कि आज अैसे सच्चे ब्राह्मण बहुत थोड़े हैं। क्षत्रिय भी कहाँ हैं? वैश्य और शूद्र भी कहाँ हैं? आप यह समझते हैं न कि शूद्र होनेमें कुछ विशेषता है? आज तो हम सब .गुलाम हैं। आज तो अेक डायर आकर हमें कँपा देता है। अिसलिअे बेहतर तो यह है कि हम सब .गुलामीमेंसे निकलकर अपने वर्ण-धर्मको समझने लगें। बहुतोंको वैश्य बनना पड़ेगा, क्योंकि आज वैश्यके पैर तले सब कुचले जा रहे हैं।

"जब मैं यह कहता हूँ कि हम ब्राह्मण बनें, तो अिसका यह मतलब नहीं कि जैसे हैं, अुससे अूँचे बनें। बल्कि यह है कि हम ब्राह्मणके अूँचे सेवा-धर्मके लायक़ बनें। आज तो हम अितने नीचे गिर गये हैं कि यह ब्राह्मण है और वह शूद्र है, यह अूँचा है और वह नीचा है, अिस भाषामें ही हमारी गाड़ी फँस गअी है।"

ता० ६–११–'२७

वर्णाश्रम-धर्म*

१

[गांधीजीके दक्खिनके दौरेमें बहुत जगह अब्राह्मण मित्र गांधीजीसे मुलाक़ात करने आते और ब्राह्मण-अब्राह्मण सवालके अलग-अलग पहलुओंपर चर्चा करते। बहुत बार वही सवाल कभी जगह पूछे जाते, मगर जवाबका आधार हर जगह पूछनेवालेकी पात्रतापर रहता। अिन सब जवाबोंको अिकट्ठा करके मैंने सवाल-जवाबके अेक सिलसिलेमें बाँध दिया है। अिनमें तंजोर, चेट्टीनाड, विरुद्धनगर और तिनेवेलीकी तमाम बातचीतें आ जाती हैं। मदुराकी बातचीतके वक्त मैं मौजूद न था, मगर मैं मानता हूँ कि अिन बातचीतोंके संग्रहमें वहाँ जिनकी चर्चा हुअी वे विषय भी आ जाते हैं। कडलोर, तंजोर और कोयिम्बटूरके सार्वजनिक भाषणों या आम तक़रीरोंमें गांधीजीने जो ख़याल ज़ाहिर किये अुन्हें मैं अिस पत्रमें दे चुका हूँ, अिसलिअे यहाँ नहीं दोहराता। अिसी तरह जिन तक़रीरोंका सार मैं दे चुका हूँ — जैसे, तिरुपुर में हुअी अूँच-नीचपनके बारेकी बातचीत — अुन्हें भी मैंने छोड़ दिया है। म० ह० दे०]

सवाल — वर्ण-धर्मपर आप जो ज़ोर देते हैं अुसे हम समझ नहीं सकते। क्या आप आज-कलकी जात-पाँतको ठीक समझते हैं? वर्णकी आपकी व्याख्या क्या है?

जवाब — वर्ण यानी अिन्सानके धन्धेके चुनावका पहलेसे किया हुआ फ़ैसला। आदमी अपने गुज़ारेके लिअे बापदादोंका ही पेशा करे, अिसका नाम वर्ण-धर्म। हर लड़का सहज ही बापके 'वर्ण' (रंग) का अनुसरण करता है, या बापका धन्धा करना पसंद करता है। अिसलिअे वर्ण अेक तरहसे ख़ानदानी विरासतका नियम है। वर्ण हिन्दुओंपर किसीकी लादी हुअी चीज़ नहीं, बल्कि जिन बुज़ुर्गोंके सिरपर हिन्दू-जातिका भला करनेकी ज़िम्मेदारी थी अुन्होंने हिन्दुओंके लिअे यह क़ायदा खोज निकाला था। यह नियम अिन्सानकी कारीगरी नहीं, बल्कि क़ुदरतका अटल क़ानून है। न्यूटनके गुरुत्वाकर्षण या क़ानून-कशिशकी तरह जो शक्ति सदा रहती है और सृष्टि या मखलूक़ातमें चलती है अुसीको अिन्सानकी बोलीमें वर्ण कह दिया है। जैसे न्यूटनकी खोजसे पहले भी गुरुत्वाकर्षणका

---

* 'ब्राह्मण और अब्राह्मण' शीर्षकसे छपी प्रश्नोत्तरी या सवाल-जवाब।

नियम मौजूद था, अुसी तरह वर्ण-धर्म भी था। अिस .कुदरती क़ानूनको ढूँढ़ निकालना हिन्दुओंके लिअे बदा था। पच्छिमके लोगोंने .कुदरतके कुछ क़ानूनोंकी खोज और अिस्तेमाल करके अपनी आर्थिक सम्पत्ति या दौलत .खूब बढ़ा ली है। अुसी तरह हिन्दू अिस अचूक सामाजिक शक्तिकी खोज करके आध्यात्मिक क्षेत्र या रूहानी अिलाक़ेमें जो कमाल हासिल कर सके हैं वह दुनियाकी किसी दूसरी जातिको नहीं मिला है।

वर्णका जात-पाँतसे कोअी सम्बन्ध नहीं। जात-पाँत अछूतपनकी तरह हिन्दू-धर्मपर अुगा हुआ 'फ़ालतू अंग' है। आज जिन 'फ़ालतू अंगों' पर ज़ोर दिया जाता है वे कभी हिन्दू-धर्ममें न थे। पर क्या अैसे 'फ़ालतू अंग' आप अीसाअी धर्म या अिस्लाममें भी नहीं देखते?

अिनका सामना आप जी भरकर कीजिये। वर्णका बनावटी भेस धरकर फिरनेवाले जात-पाँत रूपी राक्षसका आप ज़रूर नाश कीजिये। वर्णकी अिस बिगड़ी हुअी शकलने ही हिन्दू-धर्मको और हिन्दुस्तानको नीचे गिराया है। हमारी आर्थिक या माली और आध्यात्मिक या रूहानी गिरावटका बड़ा सबब यही है कि हम वर्ण-धर्मका अमल करनेमें चूक गये। बेकारी और ग़रीबीका भी यह अेक कारण है। और अछूतपनके और अुसी तरह बहुतेरे हिन्दुओंके धर्म छोड़नेके लिअे भी यही ज़िम्मेदार है।

लेकिन वर्ण-धर्मके मौजूदा राक्षसी स्वरूपका और राक्षसी रीति-रिवाजोंका विरोध करते हुअे हमें असली धर्मका ही विरोध न करना चाहिअे।

स० — वर्ण कितने हैं?

ज० — चार, — हालाँकि वर्ण-धर्मके स्वभावमें गिनतीकी अैसी कड़ाअी है नहीं। लगातार प्रयोग या आज़माअिशें और खोज करनेके बाद ऋषियोंको ये चतुर्विध भेद, या रोज़ी कमानेके चार तरीक़े मिले हैं।

स० — तो क्या अिसका यह मतलब नहीं कि जितने धन्धे अुतने वर्ण?

ज० — यह आवश्यक नहीं। समाजके तमाम धन्धोंको पढ़ने-पढ़ाने, बचाव करने, रुपया कमाने और सेवा करनेके चार खास हिस्सोंमें आसानीसे बाँटा जा सकता है। दुनियाके व्यवहारका विचार करें तो सबसे बड़ा धन्धा माल पैदा करनेका है, जैसे सब आश्रमोंमें सबसे बड़ा गृहस्थ-आश्रम है। वैश्य सब वर्णोंका सहारा है। माल-मिल्कियत न हो तो

रक्षककी क्या ज़रूरत ? तीसरे वर्णके लिअे ही पहले, दूसरे और चौथे वर्ण ज़रूरी हैं। पहला वर्ण हमेशा बहुत ही छोटा होगा, क्योंकि अुसके लिअे कठिन संयम ज़रूरी है। अच्छे बन्दोबस्तवाले या सुव्यवस्थित समाजमें दूसरा वर्ण भी छोटा ही होना चाहिअे। यही बात चौथे वर्णकी भी समझिये।

स० — जो आदमी अपना पैदायशी धन्धा न करे अुसे किस वर्णमें गिना जाय ?

ज० — हिन्दुओंके माननेके अनुसार तो अुसका वर्ण जन्मसे ही गिना जायगा। लेकिन वर्णके मुताबिक़ न जीकर वह अपना नुक़सान करता है और गिरी हुअी हालतमें पहुँचता है — पतित बनता है।

स० — मनुष्य शूद्र होकर ब्राह्मणका काम करे तो क्या वह पतित हो जाता है ?

ज० — शूद्रको ज्ञान पानेका अुतना ही हक़ है जितना ब्राह्मणको। लेकिन वह अपना गुज़ारा लोगोंको लिखा-पढ़ाकर करनेकी कोशिश करे, तो वह ज़रूर वर्ण-धर्मसे गिर जायगा। पुराने ज़मानेमें अलग-अलग धन्धोंकी अपने आप बनी हुअी पंचायतें थीं, और अलग-अलग पेशेवाले हरअेक आदमीको पोसनेका पीढ़ी-दर-पीढ़ी रिवाज था। सौ बरस पहले बढ़अीका लड़का वकील बननेका लालच नहीं करता था। आज करता है, क्योंकि अिस धन्धेमें अुसे धन चुरानेका सबसे आसान रास्ता दिखाअी देता है। वकील मानता है कि अुसे अपना दिमाग़ खर्च करनेके बदले १५,००० रुपयेकी फ़ीस लेनी चाहिअे, और हकीम साहब-जैसे डॉक्टर-बैद समझते हैं कि अुन्हें अपनी डाक्टरी सलाहके लिअे १,००० रुपये रोज़ लेने चाहिअें।

स० — तो क्या मनुष्यको अपनी पसन्दका धन्धा करनेकी छूट नहीं ?

ज० — पर बाप-दादाका धन्धा ही अुसकी पसंदका अकेला धन्धा होना चाहिअे। यह पेशा पसन्द करनेमें कोअी बुराअी नहीं। अुलटे अिसमें कुलीनता है। आज तो हम सतरंगे आदमी देखते हैं। अिसीसे समाजमें हिंसा फैली हुअी है और समाज तितर-बितर हो गया है। छिछली मिसालोंसे हमें अपने मनको भटकने न देना चाहिअे। बापका धन्धा करनेवाले बढ़अीके लड़के हज़ारों होंगे, जबकि वकीलका धन्धा करनेवाले बढ़अीके छोकरे शायद सौ भी न हों। पुराने ज़मानेमें लोगोंको

दूसरेके धन्धेपर छापा मारने और धन बटोरनेका लालच न था। अुदाहरणके लिअे सिसेरो* के समयमें वकीलका धन्धा मानभरा गिना जाता था। और कोअी बड़े दिमाग़वाला बढ़अी रुपयेके लिअे नहीं, बल्कि सेवाकी ख़ातिर, वकील बने तो वह बिलकुल ठीक ही कहा जायगा। बादमें अिस धन्धेमें नाम और धनकी लालसा घुस गअी। वैद समाजकी सेवा करते और समाज जो देता अुसीपर सबर करते। पर अब तो वे व्यापारी बन गये हैं और समाजके लिअे भी खतरनाक हो बैठे हैं। वैद और वकीलके पेशोंका हेतु या मक़सद जब सिर्फ़ दूसरोंकी भलाअी करना था तब अिन धन्धोंका परोपकारी कहलाना वाजिब था।

स० — यह सब आदर्श स्थिति या नमूनेके हालातकी बात हुअी। आज तो सब रुपयेके धन्धेके पीछे पड़े हैं। अैसी हालतमें आप क्या करनेकी सलाह देते हैं?

ज० — यह आपने ज़रा बड़ी बात कह दी। आजकल स्कूल-कॉलेजमें पढ़नेवाले लड़कोंकी गिनती कीजिये और यह ढूँढ़ निकालिये कि अिनमेंसे कितने फ़ीसदी विद्वत्ताका पेशा करते हैं। दिन-दहाड़े लूटना सबके लिअे मुमकिन नहीं। आजकलकी हलचल तो दिन-दहाड़े लूटनेकी दीखती है। कितने लोग वकील और सरकारी नौकर बन सकते हैं? धन कमानेमें लगनेका अधिकार तो वैश्योंका है। तिसपर भी जब अुनका पेशा दिन-दहाड़ेकी लूट बन जाता है तब वह तिरस्कारका पात्र हो जाता है। दुनियामें लाखों लखपती हो ही नहीं सकते।

स० — तामिलनाड़में तो तमाम अब्राह्मण अैसा धन्धा करना चाहते हैं, जो अुन्हें अपने बाप-दादोंसे न मिला हो।

ज० — २ करोड़ २० लाख तामिलनाड़के रहनेवालोंकी तरफ़से बोलनेका आपका अधिकार मैं नहीं मानता। मैं आपको अेक सूत्र देता हूँ — जिस जगह दूसरे सब न पहुँच सकें अुस जगह ख़ुद पहुँचनेका लालच हमें न रखना चाहिअे। अिस सूत्रपर अमल करना हो, तो वह मेरी व्याख्यावाले वर्ण-धर्मसे ही हो सकता है।

* मार्कस टूलियस सिसेरो (ई. पू. १०६–४३) रोमका मशहूर वक्ता या मुकर्रर, फ़िलॉसफ़र और राजनीतिज्ञ व क़ानून-पंडित था।

स० — आप यह कहते रहे हैं कि वर्ण-धर्म हमारी सांसारिक वासनाओं या दुनयावी ख़्वाहिशोंपर अंकुश या क़ाबू रखता है। यह कैसे?

ज० — मैं अपने बापका धन्धा करूँ, तो अुसे सीखनेके लिअे मुझे स्कूल भी न जाना पड़े। यानी मेरी मानसिक शक्ति आध्यात्मिक अभ्यासके लिअे और खोजके लिअे खुली रहे, क्योंकि मुझे रुपयोंकी या गुज़ारेकी तो चिंता ही न रहे। सुख-सुविधा और सच्ची आध्यात्मिक तलाशके लिअे वर्ण सबसे बढ़िया क़िस्मका बीमा है। जब मैं अपनी शक्तियोंको दूसरे कामोंमें लगाता हूँ, तो मैं दुनियाके सुखकी — मृगजलकी — खातिर अपनी आत्माको पानेकी शक्तिको या अपनी आत्माको बेच डालता हूँ।

स० — आप आध्यात्मिक कामोंके लिअे शक्तिको खुला रखनेकी बात करते हैं। आज जो अपने बाप-दादोंका धन्धा करते हैं अुनमें किसी तरहकी रूहानी तरक़्क़ी या आध्यात्मिक संस्कारिता तो दिखाअी नहीं देती — अुनका वर्ण ही अुन्हें अिसके लिअे नालायक़ बना देता है।

ज० — हम वर्णके टेढ़े-मेढ़े ख़याल मनमें रखकर बातें करते हैं। जब वर्ण-धर्म सचमुच पाला जाता था तब आध्यात्मिक शिक्षाके लिअे काफ़ी वक़्त रहता था। आज भी आप दूरके गाँवोंमें जाअिये और देखिअे कि शहरवालोंसे गाँवके लोगोंमें कितनी ज़्यादा आध्यात्मिक संस्कारिता है। शहरके लोग संयमको जानते ही नहीं।

लेकिन आपने अिस ज़मानेकी बुराअी ठीक-ठीक बताअी है। दूसरे जिस हालतको न पा सकें अुसे पानेकी कोशिश हम न करें। अगर गीता पढ़नेकी अिच्छा रखनेवाला हरअेक आदमी गीता न पढ़ सके, तो मैं गीता भी न पढ़ूँ। यही वजह है कि धन कमानेके लिअे अंग्रेज़ी पढ़नेके विरोधमें मेरी अन्तरात्मा अुबल पड़ती है। हमें अपनी जिन्दगी फिरसे अिस तरह बनानी है कि जिससे आज जो .फ़ुरसत हममेंसे मुट्ठीभर लोगोंको है वह लाखोंको भी मिल सके। यह हम वर्ण-धर्मको पाले बिना नहीं कर सकते।

ता० ११-१२-'२७

२

स० — हम आपसे बार-बार अेक ही सवाल पूछें तो आप हमें माफ़ कीजियेगा। हम अिसे ठीक-ठीक समझ लेना चाहते हैं। अलग-अलग वक़्तमें अलग-अलग धन्धा करनेवाले आदमीका कौनसा वर्ण माना जाय?

ज० — जबतक वह बापका धन्धा करके गुज़र चलाता है तबतक अुसके वर्णमें कोअी फ़र्क़ नहीं पड़ता। सेवाभावसे तो वह जो चाहे सो धन्धा करनेके लिअे आज़ाद है। लेकिन जो आदमी धन कमानेके लिअे बार-बार धन्धा बदलता है वह अधोगति पाता है और वर्ण-धर्मसे गिर जाता है।

स० — किसी शूद्रमें ब्राह्मणके सब गुण होते हुअे भी क्या अुसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता?

ज० — वह अिस जन्ममें ब्राह्मण नहीं कहलायेगा। और अुसके लिअे यह अच्छा है कि जिस वर्णमें वह पैदा नहीं हुआ अुसे वह न अपनाये। यह सच्ची नम्रता या अिन्कसारीकी निशानी है।

स० — आप मानते हैं कि वर्णके गुण विरासतमें ही मिलते हैं और अपनी कोशिशसे हासिल नहीं किये जा सकते?

ज० — किये जा सकते हैं। विरासतमें मिले हुअे गुण मज़बूत किये जा सकते हैं, और नये बढ़ाये जा सकते हैं। मगर हमें धन कमानेके लिअे नये रास्ते खोजनेकी ज़रूरत नहीं, खोजना बेजा है। हमारे बाप-दादोंकी तरफ़से जो पेशे हमें विरासत या अुत्तराधिकारमें मिले हों वे जबतक शुद्ध हों तबतक हमें अुन्हींमें संतोष मानना चाहिअे।

स० — क्या आप नहीं देखते कि किसी आदमीमें अुसके खानदानके गुणोंसे अलग क़िस्मके गुण होते हैं?

ज० — यह मुश्किल सवाल है। अिनसानकी तमाम पिछली बातोंका हमें अिल्म नहीं होता। लेकिन मैंने आपको जो वर्ण-धर्म समझाया है अुसे समझनेके लिअे आपको और मुझे अिस सवालकी गहराअीमें जानेकी ज़रूरत नहीं। मेरे पिता व्यापारी हों और मुझमें लड़वैयेके गुण दीखें तो मैं सिपाहीके तौरपर देशकी सेवा मुफ़्त भले ही करूँ, पर मुझे अपना गुज़र तो व्यापारसे ही करके सन्तोष मानना चाहिअे।

स० — आज जो जाति-भेद दिखाओी देते हैं वे अेक वर्णके दूसरे वर्णके साथ रोटी-बेटी-व्यवहार-सम्बन्धी बन्दिशोंमें ही खतम हो जाते हैं। क्या वर्णकी रक्षाके लिअे अिन बन्धनोंको क़ायम रखना ज़रूरी है?

ज० — नहीं, ज़रा भी नहीं। वर्णकी शुद्ध-से-शुद्ध हालतमें किसी भी तरहकी बन्दिश क़ायम नहीं रह सकती।

स० — ये बन्धन दूर किये जा सकते हैं?

ज० — किये जा सकते हैं। दूसरे वर्णोंमें ब्याहनेसे भी वर्ण तो क़ायम रहता ही है।

स० — तो अिसमें स्त्रीका वर्ण कौनसा माना जायगा?

ज० — जो पतिका वर्ण वही पत्नीका भी।

स० — आपने वर्ण-धर्मका जो अुसूल बयान किया वह हमारे शास्त्रोंमें मिलता है या आपका अपना है?

ज० — यह मेरा .खुदका नहीं। मुझे यह भगवद्‌गीतासे मिला है।

स० — मनुस्मृतिमें यह सिद्धान्त जिस तरह बताया गया है क्या आप अुसे मानते हैं?

ज० — सिद्धान्त तो अुसमें है ही। लेकिन व्यवहारमें अुसके जो अुपयोग बताये गये हैं वे पूरी तरह मेरे गले नहीं अुतरते। अिस ग्रंथके कुछ हिस्से बहुत अेतराज़के क़ाबिल हैं। मैं अुम्मीद रखता हूँ कि वे बादमें जोड़े गये होंगे।

स० — क्या मनुस्मृतिमें आपको नहीं लगता कि बहुतसी अन्याय-पूर्ण बातें हैं?

ज० — हाँ, स्त्रियों और नीची कहलानेवाली 'जातियों'के साथ अुसमें बहुत अन्याय है। शास्त्रके नामपर चलनेवाली बहुतसी बातें शास्त्र नहीं होतीं। अिसलिअे शास्त्रकी किताबें पढ़ते वक़्त बहुत सावधानी रखनी चाहिअे।

स० — मगर आप तो भगवद्‌गीताके मुताबिक़ चलते हैं। अुसमें कहा है कि वर्ण गुण और कर्मसे तय होता है। तब आप यह जन्मकी बात कहाँसे लाये?

ज० — मैं भगवद्गीताके अनुसार चलता हूँ, क्योंकि यही धर्मकी अेक अैसी किताब है जिसमें मुझे दोष निकालने जैसा कुछ नहीं मिला। यह सिर्फ़ अुसूल पेश करती है, और अुसपर अमल करनेका तरीक़ा ढूँढ़ निकालनेका काम हमें सौंप देती है। गीता यह ज़रूर कहती है कि वर्ण गुण और कर्मके अनुसार होता है, मगर गुण और कर्म जन्मसे विरासतमें मिलते हैं। भगवान कृष्णने कहा है कि चारों वर्ण मैंने **पैदा किये** हैं — चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्। अिसमेंसे मैंने 'जन्मतः'का अर्थ निकाला है। वर्ण-धर्म पैदायशी न हो तो अुसके कोअी माने नहीं।

स० — पर वर्णमें अूँचपन तो बिलकुल ही नहीं आता है न?

ज० — नहीं, ज़रा भी नहीं। गो कि मैं यह ज़रूर कहूँगा कि ब्राह्मण-वर्ण दूसरे वर्णोंकी आखिरी हद है, जैसे सिर शरीरकी आखिरी हद है। अिसका अर्थ सेवाकी बढ़ी-चढ़ी शक्ति है, बढ़ा-चढ़ा दरजा नहीं। बढ़ा-चढ़ा दरजा अख्तियार करते ही वह पैरों तले कुचलने लायक़ बन जाता है।

स० — आपने 'कुरळ'का नाम सुना होगा। अिस तामिल ग्रंथके लेखक कहते हैं कि कोअी भी वर्ण जन्मसे नहीं। वे कहते हैं कि पैदा होते वक़्त तो सारे जीव समान दरजेके होते हैं।

ज० — अुन्होंने जो यह कहा है वह मौजूदा ज़्यादतियोंके जवाबके तौरपर कहा है। किसी भी वर्णने अूँचपनका दावा किया होगा तो अुसके खिलाफ़ अुन्हें अपनी आवाज़ अुठानी पड़ी होगी। मगर अिससे जन्मतः वर्णकी कोअी काट नहीं होती। यह तो अूँच-नीचपर कुल्हाड़ा चलानेकी अेक सुधारककी कोशिश है।

स० — क्या आप यह महसूस नहीं करते कि आजकलकी रूढ़ियाँ या पुराने रिवाज अितने सड़े हुअे हैं कि अुन्हें जड़से अुखाड़ फेंकना और फिर अेक-दोसे शुरू करना ही सबसे अच्छा रास्ता है?

ज० — बशर्ते कि हम विधाता हों। क़लमके अेक अिशारेसे हम हिन्दू-स्वभावको बदल नहीं सकते। अिस नियमका अमल करनेकी रीति हम ढूँढ़ सकते हैं, अिसे मिटानेकी नहीं।

स० — शास्त्र बनानेवालोंने नयी स्मृतियाँ रचीं, तो आप क्यों नहीं रचते?

ज०—हाँ, अगर मैं नयी दुनिया बना सकूँ तो! तब तो मेरी हालत विश्वामित्रसे भी बुरी हो जाय। और, विश्वामित्र तो मुझसे कहीं बड़े थे!

स०—जबतक आप वर्णको नहीं मिटाते तबतक अछूतपन नहीं मिटेगा।

ज०—मैं यह नहीं मानता। फिर भी छुआछूतको मिटानेमें वर्णाश्रम मिट जाय तो मैं अेक आँसू भी नहीं बहाअूँगा। मगर मेरी व्याख्या या तारीफ़के वर्णका छुआछूतके साथ क्या ताल्लुक़ है?

स०—मगर सुधारके विरोधी अपनी हिमायतमें आपका सबूत जो पेश करते हैं?

ज०—यह हालत तो हर सुधारकके तक़दीरमें लिखी है। स्वार्थी पक्ष अुसकी बातोंका बेजा अिस्तेमाल करेंगे ही। मगर आप जानते हैं कि अुनमेंसे कुछ यह चाहते हैं कि मैं हिन्दू-धर्म छोड़ दूँ? दूसरे कुछ अैसे हैं कि अुनका बस चले तो वे मुझे हिन्दू-धर्मसे निकाल दें। मैं वर्ण-धर्मका बचाव करनेके लिअे कहीं गया नहीं, पर छुआछूत मिटानेके लिअे तो मैं वायकम तक गया था। खादी-प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम अेकता और छुआछूतका नाश, स्वराजके अिन तीन खंभोंका कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया था, अुसे मैंने बनाया था। लेकिन वर्णाश्रम-धर्मकी संस्थापनाको मैंने कभी स्वराजका चौथा खंभा नहीं कहा। अिसलिअे आप मुझपर यह अिलज़ाम नहीं लगा सकते कि मैंने वर्णाश्रम-धर्मपर ग़लत ज़ोर दिया।

स०—क्या आप जानते हैं कि आपके बहुतसे अनुयायी या पैरो आपके मक़सदको बिगड़े हुअे रूपमें फैलाते हैं?

ज०—जानता क्यों नहीं? मैं जानता हूँ कि मेरे बहुतसे अनुयायी सिर्फ़ नामके हैं।

स०—बौद्ध-धर्मको हिन्दुस्तानसे निकाल बाहर किया गया, क्योंकि अुस धर्ममें ब्राह्मणोंका बहुत ज़ोर था। अुसी तरह अगर हिन्दू-धर्मसे ब्राह्मणोंका स्वार्थ न सधा, तो वे हिन्दू-धर्मको भी निकाल बाहर करेंगे।

ज०—तो हिम्मत करके देखें! पर मुझे तो यक़ीन है कि बौद्ध-धर्म हिन्दुस्तानसे गया नहीं है। बुद्धकी ज़िन्दगीके रहस्य या राज़को सबसे ज़्यादा अपनानेवाला देश तो हिन्दुस्तान ही है। बुद्धके जीवन-रहस्यको

बौद्ध-धर्मसे अलग चीज़ समझना चाहिअे, जैसे अीशु ख्रिस्तका जीवन-रहस्य अीसाअी धर्मसे अलग चीज़ है। अुन्होंने बुद्धके खास अुपदेश या नसीहतको अपनी ज़िन्दगीमें अुतार लिया था, अिसीलिअे वे बौद्ध-धर्मको देश-निकाला दे सके थे।

स० — ब्राह्मणोंके जिस तबक़ेने बौद्ध-धर्मका सबसे अच्छा हिस्सा अपना लिया था अुसी तबक़ेने अछूतोंको मन्दिरोंमें जानेसे रोककर और अुनपर बेरहमीभरी रुकावटें डालकर भद्दे-से-भद्दे गुनाह, अमृतसरके .ज़ुल्मोंसे भी भद्दे गुनाह, किये हैं।

ज० — आपका कहना कुछ हदतक सच है। लेकिन आप यह मानकर ग़लती करते हैं कि ब्राह्मण ही अिसके दोषी हैं। अिसके लिअे सारा हिन्दू-धर्म ज़िम्मेवार है। जब वर्ण-धर्मका रूप बिगड़ा तो अुसमेंसे अछूतपन पैदा हुआ। यह कोअी जान-बूझकर की हुअी दुष्टता नहीं थी, मगर अिसका नतीजा बहुत ही दुखदायी निकला है।

स० — मगर जबतक आप 'वर्णाश्रम-धर्म' लफ़्ज़का अिस्तेमाल करते रहेंगे, तबतक अुसके साथ आजके बुरे ख़याल जुड़े ही रहेंगे।

ज० — तो अिसका सार यह निकला कि बुरे ख़याल निकाल डालो और शुद्ध वर्ण-धर्मको फिर ज़िन्दा करो।

स० — अभी तो चारों तरफ़ घोटाला है। अुसमेंसे हम किस तरह निकलें?

ज० — मुझे यही कहना है कि बुनियादको न अुखाड़ो, जो है अुसे शुद्ध करनेकी कोशिश करो। अुसके बजाय आप तो अेक अैसा नया धर्म फैलानेकी खटपटमें पड़े हैं जिसे स्वीकार करनेको कोअी तैयार नहीं। ब्राह्मण-धर्म ही तो हिन्दू-धर्म है। यानी हिन्दू-धर्मके लिअे हमारे पास अेक ही शब्द था — 'ब्राह्मण-धर्म', यानी ब्रह्म-विद्या या अिल्मे हक़। अिसे मिटानेकी कोशिश करके आप हिन्दू-धर्मको मिटानेकी कोशिश करते हैं। ब्राह्मण जब आपके हक़ोंपर हमला करें तो आप अुनसे पग-पगपर लड़ लेना और अुन्हें सुधारनेकी कोशिश करना। मगर हरअेक ब्राह्मणको भद्दी गालियाँ देनेसे कोअी फ़ायदा नहीं। ब्राह्मण ब्राह्मणमें भी फ़र्क़ होता है। अेक ब्राह्मण कट्टर सुधारक होता है, दूसरा सुधारका विरोधी होता

है। आपको सुधारक तबक़ेके ब्राह्मणोंमेंसे सबसे अच्छे आदमियोंको अपनी तरफ़ लेना चाहिअे, और अुनकी मददसे अपने कार्यक्रम या प्रोग्रामके रचनात्मक या तामीरी हिस्सेको पूरा करना चाहिअे। अिससे ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनोंको मुक्ति या नजात मिलेगी।

आप सुधारके विरोधियोंसे ज़रूर लड़िये और अुनसे कहिये — 'अगर आप लोग धन और ठाट-बाटके पीछे पड़ेंगे, विद्वान् नहीं बनेंगे और हमें सच्चा धर्म नहीं सिखायेंगे तो हम आपको ब्राह्मण नहीं कहेंगे।' तब ब्राह्मण आपकी ज़रा भी मुख़ालिफ़त नहीं कर सकेंगे। सुधार करानेके लिअे आप सख़्त हलचल कीजिये, और जहाँ किसी भी अब्राह्मणके लिअे कोअी रुकावट हो अुन स्कूलों और मन्दिरोंको छोड़ दीजिये। अिस बातका आग्रह रखिये कि मन्दिरोंके पुजारी नेकचलन, विद्वान् या आलिम और धनके लालचसे दूर हों। अगर पुराने मन्दिर अछूतोंको घुसने देनेसे अिन्कार करें तो आप नये मन्दिर बनाअिये

अब सवाल रहा दूसरे वर्णोंके साथ खानेका। अिसके लिअे मैं किसीसे लड़ने नहीं जाअूँगा। लेकिन जहाँ खानेके मौक़ेपर अैसा कोअी भेद माना जाय वहाँ अुस खानेमें शरीक़ होनेसे ज़रूर बचूँगा।

फिर मैं अछूतोंके साथ भाअीचारा बढ़ाअूँगा, अुनके साथ अपने सगे भाअी जैसा बरताव करूँगा, और तमाम छोटी-छोटी जातियों और अुपजातियोंको तोड़ डालूँगा, और चुनाँचे जब मैं अपने लड़केका ब्याह करूँगा तो कोशिश करके दूसरी अुपजातियोंमेंसे लड़की ढूँढ़ लूँगा। आज हम भद्दी रूढ़ियोंसे अितने जकड़े हुअे हैं कि आप न यहाँसे गुजरातमें जा बसनेको लड़की देंगे और न गुजरातकी लड़की तामिलनाड़में बसनेको लेंगे।

अिसके बाद मैं अछूतोंको धार्मिक शिक्षा या मज़हबी तालीमके तौरपर हिन्दू-धर्मके और नीति-धर्मके अुसूलोंकी मामूली जानकारी कराअूँगा। आज तो वे बेचारे महज़ जानवरोंकी-सी ज़िन्दगी बिता रहे हैं। मैं अुन्हें निषिद्ध या ममनूअ ख़ुराक छोड़ने और पाक व साफ़ जीवन बितानेको समझाअूँगा। आप अिन बातोंको आसानीसे बढ़ा सकेंगे और अिनमेंसे अेक बड़ा रचनात्मक कार्यक्रम पैदा कर सकेंगे।

स० — हम देखते हैं कि आपको हिन्दू-धर्मपर बड़ी भारी श्रद्धा या अेतक़ाद है। क्या आप हमें यह समझायेंगे कि हिन्दू-धर्मने हमारे लिअे क्या किया है, हिन्दू-धर्मका हमपर क्या क़र्ज़ है? क्या अुसने हमें बेहूदा वहमों और रूढ़ियोंकी विरासत नहीं दी?

ज० — मैं मानता था कि यह बात तो समझी जा चुकी होगी। वर्णाश्रम-धर्म ही दुनियाके क़दमोंमें रखी हुअी हिन्दू-धर्मकी अेक बेमिसाल भेंट है। हिन्दू-धर्मने हमें मायासे यानी मुसीबतसे बचा लिया है। अगर हिन्दू-धर्म मुझे बचाने न दौड़ा होता, तो मेरे लिअे .खुदकुशीका ही अेक रास्ता बचा था। मैं हिन्दू रहा हूँ, क्योंकि हिन्दू-धर्म अेक अैसी चीज़ है जो अपनी .खुशबू सब जगह फैलाकर दुनियाको अिन्सानके बसने लायक़ बनाती है। हिन्दू-धर्मसे ही बौद्ध-धर्मका जन्म हुआ है। आज हम जो देखते हैं वह हिन्दू-धर्मका शुद्ध स्वरूप नहीं होता, बल्कि अक्सर अुसकी बिगड़ी हुअी शकल होती है। नहीं तो, मुझे अुसकी तरफ़दारीमें बोलनेकी ज़रूरत न रहती, वह .खुद ही अपनी वकालत कर लेता — जैसे, अगर मैं पूरी तरह शुद्ध होअूँ, तो मुझे आपके आगे बोलनेकी ज़रूरत न रहे। अीश्वर अपनी ज़बानसे नहीं बोलता। और अिन्सान जितना अीश्वरके नज़दीक आता है अुतना ही वह अीश्वरवत् बनता है। हिन्दू-धर्म मुझे सिखाता है कि मेरा शरीर अन्दर रहनेवाली आत्माकी शक्तिको रोकनेवाला बन्धन है।

जैसे पच्छिमके लोगोंने दुनयावी चीज़ोंके बारेमें अद्भुत खोजें की हैं, वैसे ही हिन्दू-धर्मने धर्मके, मनोवृत्तिके और आत्माके क्षेत्रमें अिससे भी ज़्यादा अद्भुत खोज की है। लेकिन अिन भव्य और सूक्ष्म, आलीशान और बारीक, खोजोंको देखनेवाली आँख हमारे पास नहीं है। पच्छिमी विज्ञानने जो आर्थिक तरक़्क़ी की है अुससे हमारी आँखें चौंधिया जाती हैं। मुझे अुस तरक़्क़ीका मोह नहीं। सही नज़रसे देखनेपर यही लगता है कि मानो सयानेपनके भण्डार अीश्वरने ही हिन्दुस्तानको अिस तरहकी तरक़्क़ीसे बचा लिया है, जिससे जड़वाद या माद्दियातके हमलेको सहनेका अीश्वरका दिया हुआ काम यह देश पूरा कर सके। हिन्दू-धर्ममें अैसा कुछ सत्व या माद्दा है जिसने अुसे आजतक ज़िन्दा रखा है।

वह बाबिलोन, सीरिया, अीरान और मिस्रके सुधारोंके पतनका साक्षी है। दुनियामें चारों तरफ़ नज़र डालकर देखिये। रोम कहाँ है? ग्रीस कहाँ हैं? गिबनका अिटली — या रोम कहिये, क्योंकि रोम ही अिटली था — आज आपको कहीं भी ढूँढ़े मिल सकता है? ग्रीसमें जाअिये। ग्रीसकी सारी दुनियामें मशहूर संस्कृति या तहज़ीब कहाँ है? फिर हिन्दुस्तानकी तरफ़ आँखें मोड़िये। यहाँके पुराने-से-पुराने ग्रंथ कोअी जाँच कर ले और फिर आसपास नज़र डाले तो अुसे बरबस यह कहना ही होगा — 'हाँ, यहाँ पुराना हिन्दुस्तान अभी ज़िन्दा दिखाअी देता है।' सच है कि किसी-किसी जगह घूरे बन गये हैं, लेकिन अुन घूरोंके नीचे निहायत क़ीमती रत्न या जवाहर दबे पड़े हैं। और हिन्दू-धर्म समयके अितने फेर-बदलके सामने जो टिका हुआ है अुसका सबब यह है कि अुसने माली तरक़्क़ीके आदर्श या मय्यारका नहीं, बल्कि पारमार्थिक प्रगति या रूहानी तरक़्क़ीके आदर्शका सेवन किया है।

अुसने दुनियाको जो कअी भेंटें दी हैं, अुनमें गूँगी जीवसृष्टिके साथ मनुष्यकी अेकताका ख़याल अेक लासानी चीज़ है। मेरी समझसे गायकी पूजा अेक आलीशान ख़याल है, और अुसे व्यापक या वसीअ किया जा सकता है। धर्म-परिवर्तन या मज़हब बदलनेके आजकलके पागलपनसे हिन्दू-धर्म जो बचा रहा है वह भी मेरे ख़यालसे क़ीमती चीज़ है। हिन्दू-धर्मको प्रचारकी ज़रूरत नहीं। वह कहता है — 'शुद्ध जीवन बिताओ।' मेरा और आपका फ़र्ज़ सिर्फ़ पाक ज़िन्दगी गुज़ारना है। अुसका असर ज़मानेपर रह जाअेगा। फिर यह सोचो कि हिन्दू-धर्मने रामानुज, चैतन्य, रामकृष्ण जैसे कितने बड़े आदमी दुनियाको दिये हैं। हिन्दू-धर्मपर आजके समयमें जिन पुरुषोंने अपनी छाप डाली है अुनके तो नाम भी मैं यहाँ नहीं देता। हिन्दू-धर्म मरता हुआ या मरा हुआ धर्म नहीं।

फिर चार आश्रमोंकी भेंटका विचार कीजिये। यह भी अेक अद्वितीय या बेमिसाल भेंट है। अिसकी जोड़ सारी दुनियामें और कहीं नहीं मिल सकती। कैथलिक धर्ममें ब्रह्मचारियोंसे मिलते-जुलते कुँवारोंका फ़िरक़ा ज़रूर है, पर वह अुस धर्मकी संस्था नहीं। हिन्दुस्तानमें तो हर लड़केको अिस पहले आश्रममेंसे गुज़रना पड़ता था। यह कितनी भव्य कल्पना थी! आज

हमारी आँखें मैली हैं, विचार अुससे भी ज़्यादा मैले हैं, और शरीर सबसे ज़्यादा मैला है, क्योंकि हम हिन्दू-धर्मसे अिन्कार कर रहे हैं।

अभीतक अेक बात मैंने नहीं कही — मैक्समूलरने चालीस साल पहले कहा था कि युरोप अब समझता जा रहा है कि पुनर्जन्म या तनासुख कोअी वाद या बहसकी चीज़ नहीं, बल्कि अेक सचाअी है। यह भी पूरी तरह हिन्दू-धर्मकी ही देन है।

आज वर्णाश्रम-धर्मको और हिन्दू-धर्मको अुसके पुजारी ग़लत रूपमें दिखाकर अुससे अिनकार कर रहे हैं। अिसका अुपाय अुसे मिटाना नहीं, बल्कि अुसे शुद्ध करना है। हम अपने जीवनमें सच्ची हिन्दू-वृत्तिको सजीवन करें और फिर पूछें कि अिससे अन्तरात्माको सन्तोष होता है या नहीं।

ता० १८–१२–'२७

७

'ब्राह्मण और अब्राह्मण'

यह सुर्ख़ी या शीर्षक लगाकर कारवारसे श्री० नाडकर्णी लिखते हैं —

"ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवालपर आपके तमाम खयालातको, खासकर दक्खिनके पिछले दौरेमें कही गअी आपकी बातोंको, मैं लगातार दिलचस्पीके साथ पढ़ता रहा हूँ। अिसके सिवाय मैंने अपने तौरपर भी अिस सवालका अध्ययन या मुताला किया है। अिसलिअे अिस सवालकी आपने जो छानबीन की है अुसपर अपने मनकी दो शंकायें और मुश्किलें मैं आपके सामने पेश करनेकी हिम्मत करता हूँ।

आप ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवालको वर्णाश्रम-धर्मके सिलसिलेमें पैदा हुआ ज़िन्दा सवाल मानते हैं अिसमें मैं आपसे सहमत हूँ। सिर्फ़ आपको 'वर्णाश्रम' के बदले 'वर्ण' शब्द काममें लेना चाहिअे, क्योंकि अिसमें 'आश्रम' का तो सवाल ही नहीं। लेकिन अिस विषयकी चर्चामें अखबारों और व्याख्यानोंमें 'वर्ण' के साथ 'आश्रम' को जोड़ देनेका रिवाज

अितने लम्बे समयसे चला आ रहा है कि अब हमें अिसमें फेरबदल करनेकी ज़रूरत नहीं जान पड़ती ।

अिस बारेमें (ता० २२ और २९ सितम्बरके) ‘ यंग अिण्डिया ’ में छपे हुअे आपके भाषण लूँ । अिस विषयपर आखिरी भाषण या तकरीर आपने तंजोरमें की है। दुःखके साथ कहना चाहिये कि अुसमें आप ‘ सच्चे वर्णाश्रम धर्म ’ का बयान करनेकी भारी लालच देकर अेकदम रुक गये हैं और आपने कहा है : ‘ सुननेवालोंके अितने भारी समाजके सामने मुझे अिस विषयमें गहरा अुतरना अुचित नहीं । ’ मैं चाहता हूँ कि अब मेरे अिस पत्रसे आपको यह बयान ‘ यंग अिण्डिया ’ के पढ़नेवालोंके सामने रखनेकी सूझे । अिस व्याख्यानमें ‘ असली ’ ‘ आदर्श ’ वर्णाश्रम धर्मके बारेमें बोलते हुअे आपने कहा है : ‘ सच पूछा जाय तो दुनियामें किसी भी जगह मनुष्य-समाज अिस नियमका सामना नहीं कर सका है । ’ अिसी तरह कडलोरमें आपने कहा है : ‘ पश्चिमी कौमोंको और अिस्लामको भी अनजानमें अिस धर्मपर चलना पड़ता है ।

आपके ये वचन छुटपुट होते तो जात-पाँत (या वर्ण) के किसी भी समझदार विरोधीको — कितने ही कट्टर विरोधीको भी — ‘ वर्ण ’ नाम रहते हुअे भी अुसके अुस अर्थपर आपत्ति करनेका कारण नहीं था, क्योंकि आपके अिन वचनोंमें आपने वर्णका अर्थ अितना ही किया है : दूसरे देशों और दूसरे धर्मोंमें जो कायदा कुदरती तौरपर मौजूद है और जिसके कारण मेहनतका बँटवारा पीढ़ी दर पीढ़ीकी चीज़ हो जाता है, वही कायदा वर्ण है । आपकी वर्ण-व्यवस्थाका मतलब अितना ही होता, तो हिन्दुस्तानमें ब्राह्मण-अब्राह्मणका सवाल या छूत अछूतका घोटाला पैदा ही न हुआ होता । लेकिन वर्ण-व्यवस्था आप कहते हैं वैसी नहीं है । जो चीज वर्ण-व्यवस्थाके नामसे करीब करीब हमेशा पहचानी गअी है, वह तो बनावटी तौरपर कायम रखा हुआ और निहायत कड़ा सामाजिक भेद है । अिसका दूसरा नाम ‘ जाति ’ है। जातियाँ जैसी ‘ अेक समय ’ थीं, वैसी चार हों या आजकी तरह चालीस हज़ार हों, असलमें तो अेक ही हैं। अधिकार और बन्धनके बँटवारेकी, सिर्फ जन्मको ध्यानमें रखकर की हुअी, यह व्यवस्था है।

अिसकी मिसाल देखनी हो तो अयोध्याके राजा रामचन्द्रके दिन याद करें। आप जानते ही होंगे कि पुराने जमानेके अिस पूजा करने लायक क्षत्रिय राजाने अपनी प्रजाके अेक दुःखी ब्राह्मणकी फरियाद सुनकर अपनी ही प्रजाके अेक शूद्रका सिर काट दिया था; — सिर्फ अितनी सी बातपर कि अुसने चौथे आश्रमके लायक तप करके, जिसकी शूद्रोंके लिअे मनाअी थी, ब्राह्मणोंकी 'आध्यात्मिक' ठेकेदारीपर 'हमला' किया था। रामायणकी अुजली कहानीमें अिस काले धब्बेको आप रूपक कहकर अलग निकालकर नहीं रख सकते। यह कहनेसे काम नहीं चलेगा कि यह किस्सा असली रामायणमें क्षेपक या बादमें मिलाया हुआ होगा; क्योंकि यह किस्सा रामायणमें कअी सदियोंसे है और लोग अिसे बिना तकरार किये मानते आये हैं। अिसके लिअे कोअी बहाने या बचाव ढूँढे बिना आपको साफ तौरपर कबूल करना चाहिये कि यह किस्सा वर्णाश्रमपर — जिसकी आप हिमायत करते हैं अुस 'असली' 'आदर्श' वर्णाश्रमपर भी — अेक धब्बा है। अब, महात्माजी, आप और मैं सिर्फ़ वैश्य और ब्राह्मण न रहकर (क्योंकि मैं जन्मसे ब्राह्मण हूँ) सच्चे हिन्दू बनना चाहते हों, तो हमें रामके वक्तके अिस शूद्र मुनि शंबूकको धार्मिक आज़ादीका पुरानेसे पुराना रक्षक और हिन्दुस्तानके, शायद सारी दुनियाके, अितिहासमें लिखा हुआ पहला शहीद मानकर अुसकी यादको पूजना चाहिये। महात्माजी, क्या आप अिसमें मेरा साथ देनेको तैयार हैं? अैसा करनेसे ही आजकी ब्राह्मण विरोधी हलचलोंका जहर निकलेगा और अिस पुराने झगड़ेकी राखमेंसे अेक-रूप और अेक-दिल हिन्दू धर्म पैदा होगा। मैं कहता हूँ कि हिन्दू धर्मको अब भी जीना और फलना-फूलना हो, तो शंबूकको न्याय मिलना चाहिये।

वर्ण हिन्दू समाजमें चल रहा अेक कुदरती कानून ही है, अैसा बयान करनेके बाद आप फौरन ही तंजोरकी तकरीरमें कहते हैं: 'मैं मानता हूँ कि जैसे हर आदमीको अपने बापदादेकी शकल विरासतमें मिलती है, वैसे ही अुसे बापदादेके गुण और स्वभाव भी विरासतमें मिलते हैं। यह बात मान लेनेमें अिन्सानकी शक्तिका बचाव है। अैसा साफ स्वीकार करके अुसीके मुताबिक अमल करें, तो हमारी आर्थिक वासनाओं या लालच पर ठीक काबू रहे और हमारी शक्ति आध्यात्मिक खोज और आध्यात्मिक

तरक्कीका दायरा बढ़ानेके लिअे खुली हो जाय ।’ अैसा हो तो सब गांधियोंको गांधीपन और रामनाम अिन दोसे ही चिपटा रहना चाहिये, और गृहस्थकी जिन्दगी खतम करनेके बाद ठीक अुम्रमें बाजाब्ता चौथे आश्रममें दाखिल न हों, तब तक देशके सामाजिक या राजनीतिक सुधारमें कभी सिर न मारना चाहिये । नहीं तो वैश्यका राजनीतिमें पड़ना ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके आध्यात्मिक बाड़ेपर हमला करने-जैसा होगा । लेकिन क्या यह नियम भलाअी करनेवाला साबित होगा ? और फिर पीढ़ी दर पीढ़ीवाले नियमको आप कौनसा स्थान देते हैं ?

हम अिस बारेमें जरा विचार करेंगे तो दियेकी तरह दिखाअी देगा कि पीढ़ी दर पीढ़ीके कानूनके साथ धर्मके नामपर अत्याचारी बन्धन जोड़ कर हमने अिस नियमपर ज़रूरतसे ज्यादा जोर दिया है । अिसकी गवाही अितिहास देता है कि पिछले समयमें अिस नियमने हिन्दुओंको बड़ी आनबानकी घड़ियोंमें धोखा दिया है । अकबरकी हुकूमतके शुरूमें हिन्दुस्तानमें फिरसे हिन्दू राज्य कायम करनेका हेमूका बड़ा साहसी और लगभग सफल होनेपर आया हुआ प्रयत्न बेकार गया । अिसका सबब, जहाँ तक मुझे याद है, यह था कि दुश्मन अुसकी फौजको यह समझा सका कि हेमू राजपूत खानदानका न होकर ‘हलका’ है; अिसलिअे अुसे छोड़ दो ! महाराष्ट्रमें — महान् शिवाजी और पहले बाजीरावकी धरतीमें — अब्राह्मण मराठा राजकुटुम्बोंको कितने ही ब्राह्मण नेताओंने क्षत्रिय माननेसे अिन्कार कर दिया । यानी यह कि वैदिक मंत्रोंके साथ धर्मविधि करनेका क्षत्रियका हक अिन्हें न दिया गया । अिसीमेंसे ब्राह्मण-अब्राह्मणके झगड़ेकी शुरूआत हुअी — यह सोचते हुअे शर्म आती है । आपने जैसा तंजोरमें कहा वैसा भले ही कहिये कि ‘आज वर्णाश्रमका जैसा अर्थ और अमल होता है, वह तो असलकी बुरी तरह बिगड़ी हुअी शकल है ।’

अब हम मनुस्मृति तक भी पीछे जाँय, तो हमें जान पड़ेगा कि अुस ज़मानेमें भी अलग अलग वर्णोंमें शादी ब्याह होनेसे और दूसरे कारणोंसे चारके चालीस वर्ण तो हो ही चुके थे । वर्णोंमें आपसमें खाने, पीने और शादी-ब्याहकी कभी मनाअी नहीं हुअी थी; फिर भी अुस समय अेक

वर्णका दूसरे वर्णके साथ शादी-ब्याह अितना कम होता था, या अितना कम पसन्द किया जाता था कि अैसे विवाहोंसे होनेवाली औलादको अपनी नअी जातियाँ बनानी पड़ती थीं। (अिसपरसे यह सवाल अुठता है कि मिसालके तौरपर आजकलके कायस्थोंको आप 'असली चार'में से कौनसे वर्णमें रखेंगे?) और अुस जमानेमें भी चौथे वर्णपर बड़ी सख्ती थी। वे कभी वेदके मंत्र गाते सुन लिये जाते, तो अुनके कानमें अुबलता हुआ सीसा भर दिया जाता था! अिन 'असली' वर्णाश्रमके अंगोंको भी सत्य और अहिंसाके खिलाफ कहकर आप नहीं स्वीकारेंगे। पर कुछ भी हो, अिसमें शक नहीं कि आजके आपके वर्णाश्रमकी, जिसे आप 'असलकी बुरी तरह बिगड़ी हुअी शकल' कहते हैं, यह पहली हालत है।

यानी, वर्ण चार हों या (आजकी तरह) चालीस हजार, अिनमें अेक तत्त्व समान है। वह यह है कि धन्धोंने अिस वंशपरम्पराको कायम रखना चाहिये। ब्राह्मणका लड़का चाहे अकुशल याज्ञिक निकले, लेकिन अुसके अुम्दा कारीगर बननेकी आशा होने पर फिर भी अुसे कारीगर न बनते याज्ञिक ही बनना चाहिये। नहीं तो अुसे जात बाहर रहना पड़े। अिससे अुलटे, किसी अब्राह्मणमें कारीगरके बजाय याज्ञिक होनेकी ओर विशेष रुचि दिखाअी देती हो, फिर भी अुसे याज्ञिककी तरह समाज-सेवा करनेकी ख्वाहिश कभी नहीं रखनी चाहिये। हिन्दुओंके सिवा दूसरी जातियोंमें तो याज्ञिकका लड़का अपनी बुद्धिके मुआफिक अैसे अेक या अनेक मार्गोंसे समाज-सेवा कर सकता है, किसी तरह भला-बुरा याज्ञिक ही होनेका बन्धन अुसके सिर नहीं है। अिससे अुलटे, सैनिक या कारीगरका लड़का धर्म-पण्डित होकर भी चमक सकता है। हकीकत यह है कि अितिहासके कअी आला दीमाग़ लोग हीन कुलमें पैदा हुअे और आला दीमागवाले माता-पिताओंके बालक ज्यादातर साधारण दर्जेके निकले। जहाँ सैनिकोंने गणित शास्त्रियोंको जन्म दिया, वहाँ गणित-शास्त्रियोंने अुपन्यासकार तथा अैसी ही कमजोर बुद्धिवाली औलाद पैदा की है। अिस तरह वंश-परम्पराके नियममें सब कुछ नहीं आ जाता। वंशपरम्पराके नियमके सिवा 'परिस्थति' और दूसरी बहुत-सी बातें मिलकर आदमीका निर्माण करती हैं तथा समाजमें अुसकी जगह और समाज-सेवाका मार्ग ठहराती हैं।

अिस तरह ब्राह्मण-अब्राह्मणके सवालपर मैं अिस नतीजेपर पहुँचा हूँ : जैसे आप जन्मसे वैश्य होनेके कारण हिन्दुस्तानकी खराब माली हालतके लिअे वैश्योंको जिम्मेदार समझते हैं, वैसे ही जन्मसे ब्राह्मण होनेके कारण मुझे यह कहनेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती कि सारे हिन्दुस्तानकी आध्यात्मिक या रूहानी और आर्थिक या माली दोनों तरहकी गुलामीके लिअे ब्राह्मण लोग ही जवाबदेह हैं। जिन्हें बहुत मिला हुआ था, अुनसे बहुत पानेकी आशा भी रखी थी। मगर अफसोस, छोटी नजर और स्वार्थ बुद्धिसे पैदा हुअी कंजूस धर्मान्धताने आड़े आकर अुन्हें अपने जीवनका अच्छेसे अच्छा भाग समाजके पैरोंपर रखनेसे रोक दिया। नतीजा यह हुआ कि ब्राह्मणोंके धर्मको माननेवालोंके साथ साथ ब्राह्मण भी गहरी अधोगतिमें पड़े हैं। ''

ता० २०–११–'२७

८

वर्णाश्रम

पिछले अंकमें ब्राह्मण–अब्राह्मणके सवालपर श्री नाडकर्णीका पत्र छापा था। तामिलनाड़के पिछले दौरेमें मैंने अपने भाषणोंमें वर्णाश्रमके बारेमें अपने खयाल जाहिर किये थे और अुनमेंसे थोड़ा बहुत भाग 'यंग अिण्डिया' में भी अुस वक्त दिया गया था। अब अुन्हीं विचारोंको अधिक विस्तारसे समझानेका श्री नाडकर्णीका निमंत्रण मैं मंजूर करता हूँ।

सवालका मतलब साफ करनेके लिअे अेक बात कह दूँ। अेक शूद्रने संन्यासी बननेकी धृष्टता या गुस्ताखी की और अिसीपर रामने अुसका सिर काट डाला। अिस मशहूर कहानीको मैं अिस सवालमें नहीं मिला देना चाहता। मैं शास्त्रोंका लफ़्जी मानी नहीं करता और न अुन्हें अितिहास ही मानता हूँ। शंबूकका सिर

अुड़ा देनेकी बात रामके सारे चरित्रसे मेल नहीं खाती। और अलग अलग रामायणोंमें कुछ भी कहा हो, मैं तो मानता हूँ कि मेरा राम शूद्रका तो क्या, किसी औरका भी सिर नहीं काट सकता। शंबूककी कहानीपरसे अगर कुछ साबित होता है तो अितना ही कि अिस कहानीके समयमें जो शूद्र खास विधियाँ करते थे, वे मौतकी सजाके लायक समझे जाते थे। हम यह नहीं जानते कि यहाँ शूद्रका मतलब क्या है। अिस सारी कथाको मैंने रूपकके तौरपर घटाअी हुअी भी सुनी है। मगर अिससे अिस सफाअीमें फर्क नहीं पड़ता कि किसी समय हिन्दू धर्मके विकास क्रममें शूद्रोंपर कुछ बेजा बंदिशें लगाअी गअी थीं। सिर्फ शंबूकका सिर काटनेकी जो बात कही जाती है, अुसके लिअे प्रायश्चित्त करनेमें श्री नाडकर्णीका साथ देनेकी मुझे जरूरत नहीं; क्योंकि मैं यह मानता ही नहीं कि अिस नामके किसी अैतिहासिक व्यक्तिका सिर राम नामके किसी अैतिहासिक व्यक्तिके हाथों काटा गया था। हिन्दू धर्मके निचले वर्गोंपर — खासकर अछूत कहलानेवाले वर्गोंपर गुजरे हुअे जुल्मोंके लिअे तो अेक हिन्दूके नाते मैं अपने जीवनके हर पल प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। मेरी राय यह है कि वर्णाश्रमके सवालकी धर्मकी रूसे की गअी छानबीनमें शंबूक-जैसी मिसालोंके लिअे स्थान नहीं।

अिसलिअे, मेरा अितना ही कहनेका अिरादा है कि जिसे मैं वर्णाश्रम मानता हूँ, वह क्या चीज है। वर्णाश्रमके जो मानी मैं लगाता हूँ, वे हिन्दू धर्ममेंसे नहीं निकल सकते, यह कोअी साबित करके बता दे तो मुझे वर्ण-व्यवस्थासे अिनकार करनेमें जरा भी संकोच न होगा। जैसा श्री नाडकर्णी कहते हैं, वर्ण और आश्रम दो जुदा शब्द हैं। जहाँ हमारी आश्रम व्यवस्था अिन्सानको जिन्दगीका मक़सद पूरा करनेके ज्यादा लायक बनाती है, वहाँ अितना वर्ण-धर्म तो अुसके लिअे लाज़िमी और अनिवार्य ही है। वर्ण-धर्म कहता है कि मनुष्यको अपने गुजरके लिअे धर्मकी रूसे वाजिब अपने बापदादेका धन्धा ही करना चाहिये। मैं मानता हूँ कि यह कानून सब जगहके लिअे है और सारे मानव कुटुम्ब या अिन्सानी कुनबेपर राज करता है। अिसे तोड़नेसे हमें गम्भीर परिणामके जो अहम नतीजे भोगने पड़े हैं, वही सबको भोगने पड़ते

हैं। लेकिन अनजानमें ही सही, ज्यादातर मनुष्य अपने पुरखोंका ही पेशा करते हैं। अिस कानूनकी खोज करके और समझके साथ अिसका अमल करके हिन्दू धर्मने मानव-जातिकी भारी सेवा की है। अगर अिन्सान और हैवानके जीवनमें अितना ही फर्क हो कि मनुष्यका फर्ज अीश्वरको पहचानना है, तो अिसमेंसे यह नतीजा निकलता है कि अुसे अिस बातकी खोजमें ही अपनी जिन्दगीका बड़ा हिस्सा न लगा देना चाहिये कि अपने गुज़ारेके लिअे कौनसा धन्धा ज़्यादा अनुकूल या माफिक होगा। अुल्टे, अुसे यह समझना चाहिये कि बापका पेशा करना ही अुसके लिअे अुत्तम मार्ग है और फिर अपने बचे हुअे समय और बुद्धिको मानव-जातिके लिअे अीश्वरका बताया हुआ फर्ज अदा करने लायक बननेमें लगाना चाहिये।

अिस तरह, श्री नाडकर्णीकी बताअी हुअी मुश्किल यहाँ खड़ी नहीं होती, क्योंकि अपनी .खुशीसे सेवाके अनेक काम करने और अुसकी काबलियत या योग्यता पैदा करनेकी किसीके लिअे मनाअी है ही नहीं। अिसलिअे ब्राह्मणके घर जन्मे हुअे श्री नाडकर्णी और वैश्यके घर पैदा हुआ मैं ज़रूरतके वक्त तनख्वाह लिये बग़ैर राष्ट्रीय-स्वयंसेवकका, नर्सका और भंगीका काम ज़रूर कर सकते हैं। अिससे वर्ण-धर्म नहीं टूटता; पर अिस धर्मके अनुसार अुन्हें ब्राह्मणके नाते अपनी रोजीके लिअे तो पड़ोसियोंकी दयाका ही आसरा रखना चाहिये और मुझे वैश्य होनेके कारण गांधीके धन्धेसे ही गुजर चलाना चाहिये। हरअेकको कोअी भी अुपयोगी सेवाका काम करनेकी छूट है, मगर अिसके लिअे बदला माँगनेका अधिकार नहीं।

वर्ण-धर्मकी अिस कल्पनामें कोअी अेक दूसरेसे अूँचा नहीं। हरअेक पेशा जहाँ तक वह अपनी या समाजकी नीतिके खिलाफ न हो वहाँ तक अेक-सा और अिज्जतका है। समाजमें जो दरजा ब्राह्मणका है, वही भंगीका है। क्या मैक्समूलरने नहीं कहा कि हिन्दू धर्मने जीवनको दूसरे सब धर्मोंसे अधिक कर्तव्यरूप माना है?

हाँ, अितना ज़रूर मानना पड़ेगा कि हिन्दू धर्मके विकास क्रममें किसी समय अिसमें गंदे रिवाज घुस गये और अूँच-नीचकी सड़ाँधने पैठकर अुसे बिगाड़ दिया। लेकिन अूँच-नीचका खयाल हिन्दू धर्ममें

सब जगह फैली हुअी यज्ञ, त्याग या कुर्बानीकी भावनासे बिल्कुल बेमेल मालूम होता है। ज़िन्दगीके जिस निज़ाम या व्यवस्थाकी बुनियाद अहिंसापर खड़ी है और हर जानदारके लिअे शुद्ध प्रेम जिसकी असली शकल है, अुसमें किसी भी तबकेको दूसरेसे अूँचा माननेकी गुंजायश ही कहाँ हो सकती है?

अिस वर्ण-धर्मके खिलाफ कोअी यह न कहे कि अिसीके सबबसे जीवन नीरस हो जाता है और सारी अुच्च आकांक्षाअें या हौसले मारे जाते हैं। मेरी राय यह है कि वर्ण-धर्मके कारण ही जिन्दगी सबके लिअे मुमकिन होती है। अिन्सानकी बड़ीसे बड़ी ख़्वाहिशके लायक अेक ही चीज़ — आत्मप्राप्ति या हक़को पाना — है, और अुसे अुस मंजिलपर पहुँचानेवाला भी वर्ण-धर्म ही है। आज तो सब कुदरतसे ही पलभरमें मिटनेवाले रुपये पैसेके कामोंके पीछे विचार और पुरुषार्थ दौड़ाते दीखते हैं और अिसमें अितने फँस जाते हैं कि जो अेक मात्र ज़रूरी चीज है, अुसे भूल जाते हैं।

मुझे कोअी यह कहे कि वर्णका जो मतलब मैंने बताया है, अुसकी ताअीद करनेवाली कोअी बात हिन्दू धर्मके आचारग्रंथ स्मृतियोंमें नहीं है, तो अुसे मेरा जवाब यह है कि जीवनके बुनियादी अटल सूत्रोंपर रची हुअी आचारकी स्मृतियोंमें हमारे नये नये तजरबों और नअी नअी देखभालके मुताबिक समय समयपर फेरबदल हुआ ही करते हैं। स्मृतियोंमेंसे अैसे कितने ही नियम बताये जा सकते हैं, जो लाजिमी तो क्या अमल करने लायक भी नहीं मालूम होते। जिन्दगीके अटल अुसूल तो अिने-गिने ही होते हैं और वे सब धर्मोंमें अेक-से हैं। जुदा जुदा धर्म अिनपर जुदा जुदा तरहसे अमल करते हैं। और कोअी भी धर्म अभी तक सारे मुमकिन तरीकोंसे अिनपर अमल नहीं कर सका। जैसे जैसे विचार फैलते जायँ और नअी नअी हकीकतोंकी जानकारी बढ़ती जाय, वैसे वैसे अिन अुसूलोंका विस्तार भी होना ही चाहिये। मैं मानता हूँ कि अिन्सानका अनुभव बढ़ता है, अुसीके साथ शब्दोंके अर्थका भी विकास होता है। यज्ञ, सत्य, अहिंसा, वर्णाश्रम वगैरा लफ्जोंके पिछले ज़मानेमें जो अर्थ थे, अुनसे आज कितने ही व्यापक और समृद्ध हो गये हैं। यह कायदा

'वर्ण' शब्दपर लागू करें, तो अिसके चालू अर्थको पकड़े रहना बेजा है, बेवकूफी है। अगर हम यह मानते हों कि अिस जमानेकी ज़रूरतोंके साथ या हमारी नैतिक भावनाके साथ अिसका मेल नहीं बैठता, तो अिसके पीछे पड़े रहना आत्महत्या या खुदकुशी है।

अिस तरह वर्णका विचार करें, तो अुसका आजकलकी जात-पाँतसे कोअी ताल्लुक़ नहीं। अिसी तरह दूसरे वर्णके साथ खानेपीने और शादी-ब्याहकी मनाअी भी वर्ण-धर्म माननेका ज़रूरी अंग नहीं। हो सकता है कि ये बातें वर्ण-व्यवस्थाके बचावके लिअे जारी की गअी हों। संयमकी बुनियादपर खड़ी की गअी किसी भी जीवन-व्यवस्था या जिन्दगीकी तरतीबमें मनमाने ब्याहपर रोक लगाना ज़रूरी है। मनमाने खानपानकी रोक सफाअीके खयालसे या रहन-सहनके भेदसे पैदा होती है। लेकिन पहले अिस रोककी परवाह न करनेवाला किसी भी तरहकी समाज या कानूनकी सज़ाके लायक या वर्णके बाहर निकालनेके लायक नहीं समझा जाता था, और न आज भी समझा जाना चाहिये।

असलमें वर्ण चार थे। यह बँटवारा समझकर किया हुआ और समझमें आने लायक था। लेकिन वर्णकी संख्या या तादाद वर्ण-धर्मका कोअी अंग नहीं था। जैसे, दरजीको लुहार न बनना चाहिये, हालाँकि दोनों वैश्य माने जाते हों और माने जाने चाहियें।

तामिलनाड़में सबसे जोरदार अुज्र तो यह सुना कि वर्ण-व्यवस्थाका मेरा अर्थ देखते हुअे वह कितनी भी अच्छी और निर्दोष जान पड़ती हो, लेकिन अुसके साथ जो बदबू लगी हुअी है, अुसकी वजहसे या तो अुसे कोअी नया नाम देना चाहिये या अुसको बिलकुल मिटा देना चाहिये। यह आपत्ति करनेवालोंको डर यह था कि मेरे अर्थकी तरफ तो ध्यान दिया नहीं जायगा और वर्णके नामपर आज हिन्दू धर्ममें जो बेहूदा भेदभाव और ज्यादतियाँ हो रही हैं, अुनकी हिमायतमें मेरे कहनेको सबूतके तौरपर पेश किया जायगा। अिन लोगोंने यह भी कहा कि मामूली लोगोंकी समझमें जात-पाँत और वर्णके मानी अेक ही हैं; अिसके सिवा वर्णका संयम तो कहीं नहीं पाळा जाता, और जगह जगह वर्णका जुल्म ही देखनेमें आता है।

अिसमें शक नहीं कि अिन सब आपत्तियोंमें बहुत सार है। मगर अिस तरहके अुज्र तो अेक समयकी अच्छी मगर आजकी सड़ी हुअी बहुतेरी व्यवस्थाओंके खिलाफ अुठाये जा सकते हैं। सुधारकका काम यह है कि वह अुस व्यवस्थाकी ही जाँच करे और अुसकी खराबियाँ दूर होने जैसी हों तो अुसे सुधारनेमें ही लग जाय। मगर वर्ण सिर्फ अिन्सानका कायम किया हुआ बन्दोबस्त नहीं, बल्कि अुसका ढूँढा हुआ कानून है। अिसलिअे अुसका नाश नहीं किया जा सकता। अिसका छिपा हुआ भेद और अिसकी ताकतें ढूँढनी चाहियें और समाजकी भलाअीके लिअे अुनका अिस्तेमाल होना चाहिये। हमने देख लिया कि वर्ण-धर्म या वर्ण-व्यवस्था खुद बुरी नहीं; बुराअी तो अिसके साथ लगी हुअी अूँच-नीचकी भावनामें है।

अेक सवाल यह भी अुठता है कि आजकल जब चारों वर्ण या अुपवर्ण सब अंकुश तोड़ रहे हैं, अपना आर्थिक फायदा बढ़ानेके लिअे जा-बेजा तमाम तरीके काममें ले रहे हैं और जब कितने ही वर्ग दूसरोंसे अूँचा होनेका दावा करते हैं और दूसरे अिनका वाजिब विरोध करते हैं, तब वर्ण-धर्म पर अमल किस तरह किया जाय? हम ध्यान न देंगे तो भी यह कानून खुद अपना काम किये बिना नहीं रहेगा। लेकिन वह सजाके तौरपर होगा। अगर बरबादीसे बचना हो, तो हमें भी अिसके वश होना ही पड़ेगा। और आज यह देखते हुअे, कि हम अपने पर भी यही हैवानी क़ानून लागू करनेमें मशगूल हैं कि 'सबसे लायक यानी शरीरसे सबसे समर्थ ही बचेगा', यह मानना अच्छा है कि हम सब अेक ही वर्णके यानी शूद्र हैं; फिर भले ही कुछ लोग शिक्षक हों, कुछ सिपाही हों या दूसरे कुछ व्यापारमें लगे हों। मुझे याद है कि १९१५ में नेलोरकी सामाजिक परिषदके सभापतिने यह सुझाया था कि चूँकि पहले सब ब्राह्मण थे, अिसलिअे सबको ब्राह्मण मानना चाहिये और दूसरे वर्ण मिटा देने चाहियें। यह सुझाव मुझे अुस वक़्त भी अजीब लगा था और आज भी अजीब लगता है। ये सुधार अगर शान्तिसे करने हों, तो अूँचे कहलानेवाले वर्णोंको नीचे अुतरना पड़ेगा। जिनको सदियोंसे अपनेको समाजमें नीचेसे नीचा माननेकी **तालीम** मिली है, वे अेकाअेक अूँचे कहलानेवाले वर्णोंकी तरह साधन-सम्पन्न या मालदार नहीं हो सकते। अिसलिअे अगर

वे सत्ता लेना चाहें, तो सिर्फ़ खून बहाकर या दूसरे शब्दोंमें कहें तो समाजका संहार या नाश करके ही ले सकते हैं।

समाजको फिरसे बनानेकी अपनी योजनामें मैंने 'अछूत' जातियोंका जिक्र नहीं किया, क्योंकि वर्ण-धर्ममें या हिन्दू धर्ममें, मैं अछूतपनकी गुंजायश नहीं देखता। ये वर्ग दूसरे सबके साथ शूद्रोंकी जमातमें मिल जायँगे। अिस शूद्र वर्गमेंसे पवित्र या पाक होकर धीरे धीरे दूसरे तीन वर्ण पैदा होंगे। अिनके पेशे अलग अलग होते हुअे भी अिनका दरजा बराबर होगा। ब्राह्मण बहुत थोड़े होंगे। क्षत्रियोंका वर्ग अिससे भी थोड़ा होगा और वे आजकलकी तरह भाड़ेके सिपाही या बेलगाम राजा न होंगे, बल्कि कौमके सच्चे रक्षक और हवालदार होंगे और राष्ट्रकी सेवामें जान देनेवाले होंगे। सबसे छोटा वर्ग शूद्रोंका होगा, क्योंकि अच्छे बन्दोबस्तवाले समाजमें अिन्सान भाअी-बहनोंसे कमसे कम मज़दूरी कराअी जायगी। बड़ीसे बड़ी तादाद वैश्योंकी होगी। अिस वर्णमें तमाम धन्धे --- किसान, व्यापारी, कारीगर वगैरा सब — शामिल होंगे। यह योजना खयाली पुलाव पकाने जैसी लग सकती है। लेकिन आज जिस समाजको मैं तितर-बितर होता देख रहा हूँ, अुसके बेलगाम और मनमाने व्यवहारके माफिक जीनेके बजाय मैं अपने खयालके अिस मनोराज्यमें विचरना ज्यादा पसन्द करता हूँ। किसी शख्सका मनोराज्य समाजके हाथों मंजूर न हो, तो भी अुसे अुसमें रहने और विचरनेकी छूट है। हरेक सुधारकी शुरूआत व्यक्तिसे ही हुअी है। जिस सुधारमें सुधारकके प्राण हों और जिसे शूरवीर आत्माका सहारा हो, अुसे सुधारकका समाज स्वीकारे बिना नहीं रहता।

ता. २७–११–'२७

९

वर्ण और कौम

अेक विद्यार्थी अपना नाम देकर लिखता है :

"मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानके कौमी सवाल या साम्प्रदायिक समस्याके बारेमें आप दिन-रात तेजीसे विचार कर रहे हैं और आपने जाहिर किया है कि जिन दो शर्तोंपर आप अगली गोलमेज परिषद्में भाग ले सकते हैं अुनमेंसे अेक शर्त अिस सवालका हल है। आज छोटी जातियों या अल्पमतवाली कौमोंके सवालका हल बहुत कुछ अुनके नेताओंपर निर्भर है। मगर तमाम कौमी झगड़ोंकी जड़ अुखाड़ फेंकनेके लिअे ये लोग शायद किसी काम-चलाअू समझौतेपर पहुँच भी जायँ, तो अुससे काम पूरा नहीं होता।

सारे कौमी भेदकी जड़ काटनेके लिअे बहुत ज्यादा मज़बूत सामाजिक मेलजोल अनिवार्य या लाजिमी है। आज तो हर क़ौमका सामाजिक जीवन दूसरी सभी जातियों और कौमोंकी जिन्दगीके साथ बिलकुल अछूत-जैसा होता है। हिन्दू-मुसलमानकी ही बात लीजिये। हिन्दुओंके बड़े त्योहारोंपर मुसलमान भाअी हिन्दुओंकी आवभगत नहीं करते। अिसी तरह मुसलमान त्योहारोंकी बात है। अिससे जो कौमी अलगावकी भावना पैदा होती है, वह देशको भलाअीके लिअे बहुत ही नुकसान देह है।

दूसरा जो अुपाय कितने ही लोगोंने सुझाया है, वह है अलग अलग जातियोंके बीच ब्याह-शादीका सम्बन्ध। जहाँ तक मैं आपकी मान्यताओं या विश्वासोंको जानता हूँ, आप जातपाँतके बारेमें मजबूत विचार रखते हैं; यानी अिसका यह मतलब हुआ कि आपकी रायमें तो अेक जातिका दूसरी जातिमें ब्याह होना लम्बे समय तक हिन्दुस्तानियोंको नापसन्द ही रहेगा। जब तक अिन दो कौमोंके बीच कुछ भी अलगाव रहेगा, तब तक कौमी भेदभावको पूरी तरह मिटा देना बहुत ही मुश्किल काम है।

'नये हिन्दुस्तान' के धर्मराज्यमें अलग अलग जातियोंमें आपके खयालसे किस तरहके आपसी ताल्लुकात रहेंगे? सामाजिक व्यवहारमें क्या वे आजकी तरह ही अलग अलग रहेंगी? मैं मानता हूँ कि अिस सवालके हलपर हिन्दुस्तानी राष्ट्रकी आयन्दा भलाअीका दारमदार है।

अेक बात और। अगर हम जातपाँतको मानें तो अछूत कहानेवाले लोगोंकी हालत बहुत नाजुक हो जाती है। हमें अछूतोंको अूँचा अुठाना है,

तो हम जातपाँतके बन्धन चालू रख ही नहीं सकते। जाति और धर्मका भेद, जो अलगावका वायुमण्डल पैदा करता है, दुनिया भरके साथ भाअीचारा बढ़ानेके खयालसे शाप-जैसा है। जातपाँतकी व्यवस्था अूँच-नीचकी झूठी भावना पैदा करती है। अिसमेंसे बुरे नतीजे निकलते हैं। तब यह कैसे बताया जा सकता है कि जातपाँतके अिन पुराने बन्धनोंके बारेमें श्रद्धा या अेतक़ाद ठीक है।

ये सवाल मेरे दिमागमें महीनोंसे घूम रहे हैं, और मैं आपका दृष्टिबिन्दु समझ नहीं सका। अिन प्रश्नोंका हल निकालनेके लिअे मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरी मुश्किल दूर करें।

मैं अलाहाबाद युनिवर्सिटीमें बी० अे० क्लासका विद्यार्थी हूँ। किसी भी तरह हिन्दू मुसलमानोंमें भाअीचारेकी भावना पैदा करनेको मैं बेचैन हूं। लेकिन मेरे सामने मुश्किलें बहुत हैं। अिनमेंसे अेक जातपाँतके बारेमें है, जो मैंने आपके सामने पेश की है। दूसरी मांस खानेकी बाबत है। मुसलमानोंके जिस खानेमें मांस परोसा जाय, अुसमें मैं कैसे शरीक हो सकता हूँ? मुझे रास्ता बतानेवाला आपसे अच्छा कोअी नहीं। अिसीलिअे अिस पत्रके जरिये आपके पास हाज़िर होता हूँ।"

यह कहना पूरी तरह सच नहीं कि हिन्दू मुसलमान अेक दूसरेके त्योहारके दिन आपसमें आवभगत नहीं करते। लेकिन यह ज़रूर चाहूँगा कि अैसी आवभगत बहुत ज्यादा मौक़ोंपर और काफी अधिक मात्रामें हो।

जातपाँतके बारेमें मैने बहुत बार कहा है कि आजके मानीमें मैं जातपाँतको नहीं मानता। यह 'फालतू अंग' है और तरक्कीके रास्तेमें रुकावट-जैसा है। अिसी तरह आदमी आदमीके बीच अूँच-नीचका भेद भी मैं नहीं मानता। हम सब पूरी तरह बराबरके हैं। लेकिन बराबरी आत्माकी है, शरीरकी नहीं। अिसलिअे यह मानसिक अवस्था या दिमागी हालतकी बात है। बराबरीका विचार करनेकी और अुसे जोर देकर जाहिर करनेकी ज़रूरत पड़ती है, क्योंकि दुनियामें अूँच-नीचके भारी भेद दिखाअी देते हैं। अिस बाहरसे दीखनेवाले अूंच-नीचपनमेंसे हमें बराबरी पैदा करनी है। कोअी भी मनुष्य अपनेको दूसरेसे अूँचा मानता है, तो वह अीश्वर और मनुष्य दोनोंके सामने पाप करता है। अिस तरह जातपाँत जिस हद तक दरजेका फर्क़ जाहिर करती है, अुस हद तक बुरी चीज है।

लेकिन वर्णको मैं अवश्य मानता हूँ। वर्णकी रचना पीढ़ी दर पीढ़ीके धन्धोंकी बुनियादपर हुअी है। अिन्सानके चार धन्धे सार्वत्रिक या सब जगह चलनेवाले हैं — दान देना, दुखीको बचाना, खेती-व्यापार और शरीरकी मेहनतसे सेवा। अिन्हींको चलानेके लिअे चार वर्ण बनाये गये हैं। ये धन्धे सारी मानव-जातिके लिअे समान हैं, पर हिन्दू धर्मने अुन्हें जीवनधर्म क़रार देकर अुनका अिस्तेमाल समाजके सम्बन्धों और आचार-व्यवहारको नियममें लानेके लिअे किया है। गुरुत्वाकर्षण या जमीनकी कशिशके कानूनको हम जानें या न जानें, अुसका असर तो हम सभीपर होता है। लेकिन वैज्ञानिकों या सायंसदाँओंने अुसके भीतरसे अैसी बातें निकाली हैं, जो दुनियाको चौंकानेवाली हैं। अिसी तरह हिन्दू धर्मने वर्ण-धर्मकी तलाश करके और अुसका प्रयोग करके दुनियाको चौंकाया है। जब हिन्दू जहालतके शिकार हो गये, तब वर्णके बेजा अिस्तेमालके कारण अनगिनत जातियाँ बनीं और रोटी-बेटी व्यवहारके बेज़रूरी और हानिकारक बन्धन पैदा हो गये। वर्ण-धर्मका अिन पाबन्दियोंके साथ कोअी नाता नहीं। अलग अलग वर्णके लोग भीतर भीतर रोटी-बेटी व्यवहार रख सकते हैं। चरित्र और तन्दुरुस्तीकी खातिर ये बन्धन ज़रूरी हो सकते हैं। लेकिन जो ब्राह्मण शूद्रकी लड़कीसे या शूद्र ब्राह्मणकी लड़कीसे ब्याह करता है, वह वर्ण-धर्मको नहीं मिटाता।

अपने धर्मके बाहर शादी करना दूसरा ही सवाल है। अिसमें भी जब तक स्त्री पुरुष दोनोंको अपना अपना धर्म पालनेकी छूट हो, तब तक अिस तरहके विवाह सम्बन्धमें नैतिक दृष्टि या अखलाकी नजरसे मुझे कोअी बाधा नहीं दीखती। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि अैसी शादियोंसे शान्ति कायम होगी। शान्ति कायम हो जानेके बाद ज़रूर अैसे ब्याह-शादी हों। जब तक हिन्दू-मुसलमानोंके दिल खिंचे हुअे हैं, तब तक हिन्दू-मुसलमानोंकी ब्याह-शादियोंकी हिमायत करनेकी कोशिशका नतीजा सिवा आपत्तिके मुझे कुछ नहीं दीखता। अैसे अिक्के-दुक्के सम्बन्ध सुखदायी साबित हो सकते हैं। लेकिन अैसे अपवाद अुन्हें आम बनानेकी हिमायतके कारण नहीं समझे जा सकते। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच थाली भेजनेका व्यवहार तो अभी भी काफ़ी है।

लेकिन अिससे भी शान्ति तो बढ़ी ही नहीं। मेरा पक्का विश्वास है कि रोटी-बेटी व्यवहारका कौमी अेकताके साथ किसी भी तरहका ताल्लुक नहीं। झगड़ेके कारण तो आर्थिक और राजनीतिक यानी माली और सियासी हैं। और अिन्हींको दूर करना है। यूरोपमें रोटी-बेटी व्यवहार है। फिर भी यूरोपके लोग आपसमें जिस तरह लड़ लड़कर मरते हैं, अुस तरह तो हम हिन्दू-मुसलमान अितिहासभरमें कभी नहीं लड़े। हमारे आम लोग तो अलग ही रहे हैं।

'अछूत' अेक जुदा वर्ग है — हिन्दू धर्मके माथेपर लगा हुआ कलंक है। जातपाँत रुकावट है, पाप नहीं। अछूतपन तो पाप है, सख्त जुर्म है; और हिन्दू धर्म अिस बड़े साँपको समय रहते नहीं मार डालेगा, तो वह अुसको खा जायगा। अछूतोंको अब हिन्दू धर्मके बाहर हरगिज़ न समझना चाहिये। अुन्हें हिन्दू समाजके मातबर आदमी समझना चाहिये, और अुनके धन्धेके मुताबिक वे जिस वर्णके लायक हों, अुसी वर्णके अुन्हें समझना चाहिये।

वर्णकी मेरी की हुअी व्याख्या या तारीफ़के हिसाबसे तो आज हिन्दू धर्ममें वर्ण-धर्मका अमल होता ही नहीं। ब्राह्मण नाम रखनेवाले विद्या पढ़ाना छोड़ बैठे हैं। वे और और धन्धे करने लगे हैं। यही बात थोड़ी बहुत दूसरे वर्णोंके बारेमें भी सच है। असलमें विदेशी हुकूमतके नीचे होनेके कारण हम सब गुलाम हैं और अिस तरह शूद्रसे भी हल्के — पश्चिमवालोंकी निगाहमें अछूत हैं।

यह खत लिखनेवाला अनाज ही खाता है, अिसलिअे मांस खानेवाले मुसलमानोंके साथ खानेके लिअे अुसे मुश्किल हो रही है। मगर अुसे याद रखना चाहिये कि मांस खानेवाले मुसलमानोंके बजाय हिन्दू ज्यादा हैं। अन्नाहारीको जब तक अैसी खुराक परोसी जाय जिसके खानेमें कोअी हर्ज न हो और सफाअीसे पकाअी गअी हो, तब तक अुसे हिन्दू या दूसरे मांस खानेवालोंके साथ बैठकर खानेकी छूट है। फल और दूध तो जहाँ भी वह जायगा हमेशा मिल ही जायगा।

ता० ७–६–'३१

१८

वर्ण-धर्म

"अूंच-नीचका भाव मिटा दिया जाय, छोटी जातियाँ मिटा दी जायें और भोजन व्यवहार किसी भी वर्गके साथ हो, तो परहेज़ न किया जाय और अन्तरजातीय या अेक वर्णके दूसरे वर्णमें विवाहकी गुंजायश रखी जाय, अैसी हिमायत करनेके बाद भी यह कहना क्या मानी रखता है कि वर्णव्यवस्था हम तोड़ना नहीं चाहते और हम वर्णव्यवस्थाको बढ़ाना और सुधारना चाहते हैं?

"अिसी सवालमेंसे अेक सवाल यह पैदा होता है: ब्राह्मण और वैश्य आपसमें ब्याह कर सकते हैं और अिसे आप धर्मके खिलाफ नहीं मानते, तो ब्राह्मण और शूद्रके बारेमें भी आप यही दलील रखेंगे न? अैसी हालतमें हरिजनोंके मुखिया अूंचे वर्णवालोंसे कहें कि 'जब आप हमें अपनी लड़कियाँ देंगे तभी हम मानेंगे कि आप हमें बराबरीके समझते हैं,' तो आपके अिस कहनेका भरोसा नहीं होता कि आप वर्ण-व्यवस्थाको तोड़ना नहीं चाहते। मुझे यह साफ जानना है कि खानेपीने और शादी-ब्याहके बारेमें आप क्या मर्यादा या हद रखते हैं?"

यह सवाल अेक हरिजन सेवकने किया है। मेरी बात अिसलिअे समझमें नहीं आती कि आज हम जिसे वर्ण-व्यवस्था मानते हैं, अुसे मैं नहीं मानता। आजकी वर्ण-व्यवस्थाका मतलब सिर्फ छुआछूत और रोटी-बेटी व्यवहारकी पाबन्दियाँ हैं। आजकलके छुआछूतको मैं अखा भगतकी भाषामें 'फालतू अंग' मानता हूँ, छोड़ने लायक मानता हूँ। रोटी-बेटीकी पाबन्दीको वर्णका हिस्सा माननेके लिअे पुराने रिवाजके सिवा शास्त्रका कोअी आधार नहीं।

अिससे अुलटे, वर्णका गुजारेके धन्धेके साथ नज़दीकका रिश्ता है। सबका धन्धा ही अुनका अपना धर्म है। अुसे जो छोड़ता है, अुसका वर्ण बिगड़ जाता है और अुसका अपना नाश होता है; यानी अुसकी आत्मा मर जाती है। यह आदमी वर्णमें मिलावट पैदा करता है और अिससे समाजको नुकसान पहुँचता है, समाजका अिंतजाम टूटता है।

जब सभी अपना अपना वर्ण छोड़ देते हैं, तब समाजकी कुव्यवस्था या बदअिन्तजामी बढ़ती है, अन्धाधुन्धी फैलती है और समाजकी बर्बादी होती है। ब्राह्मणोंके वर्णने विद्या देनेका काम छोड़ा कि वह गिरा। क्षत्रियोंने प्रजाके बचावका काम छोड़ा कि अुनका वर्ण बिगड़ा। वैश्य रुपया पैदा करना छोड़ दें, तो वे वर्णसे गिरते हैं। शूद्र सेवा छोड़ें, तो अुनका पतन है। सब अपने अपने धर्ममें लगे रहकर बराबरीके रहते हैं। जो अपना धर्म छोड़ता है, अुसीका पतन होता है। अपना धर्म छोड़नेवाले ब्राह्मणसे अपना धर्म पालनेवाला शूद्र अच्छा है।

अिस वर्णमें अधिकारकी गुंजायश नहीं। यह सिर्फ धर्म है, फ़र्ज़ है। जहाँ फ़र्ज़की बात है, वहाँ अूँच-नीचका ख़याल रह ही नहीं सकता।

आज वर्ण-धर्म मिटा हुआ दीखता है। अेक वर्ण भी अपना धर्म छोड़ दे, तो वर्ण मिट जाता है। आज तो ब्राह्मणने ब्राह्मणपन, क्षत्रियने क्षत्रियपन और वैश्यने वैश्यपन छोड़ दिया है। कोअी यह शंका कर सकता है कि रुपया कमानेके लिअे तो सभी पचते हैं, अिसलिअे वैश्यपन कायम है यह माननेमें क्या बुराअी है? मगर अैसा कहना ठीक नहीं। आज वैश्य अपने ही लिअे रुपया पैदा करते हैं, अिसलिअे गीताकी भाषामें वे चोर गिने जायेंगे। वैश्यका धर्म रुपया पैदा करके अुसमेंसे अपने गुज़ारेके लायक रखकर बाकी समाजके काममें लगाना है। अैसा वैश्यधर्म पालनेवाला कोअी मुश्किलसे ही पाया जाता है। अिसलिअे वैश्यका वर्ण भी मिट ही गया।

अब रह गया शूद्रका धर्म। अिसे पालनेवाले कितने शूद्र निकलेंगे? बेमनसे की हुअी मजूरी सेवा नहीं। धर्ममें जबरदस्तीका काम नहीं। धर्मको समझकर समाजकी तरक्कीके लिअे अपनी मर्जीसे की हुअी मजूरी ही सेवा कहलायेगी। अिस तरह दुःखके साथ यह मानना ही पड़ेगा कि वर्ण-धर्मका बिलकुल नाश हो गया है। शूद्रको मजूर बताकर व्याख्या करनेवालेने अुसकी बेअिज्जती की है और हिन्दू धर्मको नुकसान पहुँचाया है।

लेकिन वर्ण-धर्म हिन्दुओंकी रगरगमें पैठा हुआ है। बिना समझे अुन्होंने भले ही अुसका सम्बन्ध रोटी-बेटी व्यवहार और छुआछूतके साथ जोड़ दिया हो। वर्ण-धर्मके ख़यालके बिना हिन्दुओंको चैन नहीं पड़ता।

अिसलिअे अुसको फिरसे अुठाया जा सकता है। तपके बिना धर्मको जगाना या अुसका अुद्धार करना नामुमकिन है। तप ही अेक अैसी बड़ी ताकत है, जिसके जरिये धर्म बच सकता है, कायम किया जा सकता है। ज्ञानके बिना तप तप नहीं, बल्कि शरीरको दुःख देना ही है। तप और ज्ञानका मेल तो ब्राह्मण धर्ममें ही हो सकता है। जो ब्रह्मज्ञान पानेके लिअे मेहनत करे, वह ब्राह्मण होने लायक है। यह कोशिश आज होगी, तो किसी दिन हिन्दू धर्म यानी वर्ण-धर्मका अुद्धार हो जायगा। खुशक़िस्मतीसे अैसी कोशिश करनेवाला अेक छोटा-सा वर्ग आज मौजूद है। अिससे मुझे अटल विश्वास है कि हिन्दू धर्म — शुद्ध सनातन धर्म — फिर अपना तेज प्रगट करके दुनियाको भलाअीका रास्ता दिखायेगा।

मेरा हिन्दू धर्म सब जगह फैला हुआ है। अुसकी किसी धर्मके साथ दुश्मनी नहीं और न वह किसीकी बेकदरी करता है। सब धर्म अेक दूसरेसे गुँथे हुअे हैं। सबमें कोअी न कोअी विशेषता पाअी जाती है। पर अेक भी धर्म दूसरेसे चढ़ता हुआ नहीं है। मेरा अैसा मानना है कि सब धर्म अेक दूसरेकी कमी पूरी करते हैं। अिसलिअे किसी धर्मकी विशेषता दूसरेके खिलाफ़ नहीं हो सकती, दुनियामें सबके माने हुअे अुसूलोंकी विरोधी नहीं होती। वर्ण-धर्मको अिस नजरसे देखने पर अुसका वही मतलब निकलता है, जो मैंने किया है। और अितहास बताता है कि हिन्दू धर्मको माननेवाले किसी वक़्त अपनी मर्ज़ीसे अुसका पालन करते थे।

अिस वर्ण-धर्मके पालनको फिरसे मुमकिन बनानेके लिअे सबको खुशीसे शूद्रोंका धर्म अख्तियार करनेकी ज़रूरत है। शूद्र ज्यादातर शरीरकी मेहनतके जरिये सेवा करता है। यह धर्म सबके लिअे आसान है। अिस-लिअे यही सब कर सकते हैं। सब अपनेको शूद्र समझें, तो अूँच-नीचका भाव जाता रहे।

कोअी कहेगा, 'अगर सब अपनेको शूद्र बतावें, तो हरिजन ही क्यों न बतावें?' मैं अिस आग्रहका बिलकुल विरोध न करूँगा, लेकिन धर्ममें वर्ण पाँच नहीं हैं, और अछूतपन तो मिट ही रहा है। अिसलिअे

मैं 'शूद्र' शब्द काममें लेता हूँ। मालवीयजी महाराजकी अध्यक्षता या सदारतमें हिन्दू जातिके नामपर बम्बअीमें ली गअी प्रतिज्ञाके* बाद जन्मसे अछूतपन माननेकी हिन्दू धर्ममें गुंजायश नहीं रही। अिसलिअे वर्ण-धर्मको फिरसे अूँचा अुठाते समय सबकी गिनती हरिजनोंमें करनेकी बात बेमौका समझी जायगी। हरिजन और दूसरे सब लोग शूद्र बनकर रहें, तो सहजमें सब हरिके जन यानी अीश्वरके भक्त बन जायँ।

लेकिन सब समझ बूझकर सेवाका धर्म पालने लगें और अपनेको शूद्र मानने लगें, तो फिर यह तो हो ही नहीं सकता कि कोअी ब्रह्मविद्या न सीखे। अपनी अपनी अिच्छाशक्तिके हिसाबसे कोअी ब्रह्मविद्या सीखेगा और सिखायेगा, कोअी प्रजाका पालन करेगा और कोअी रुपया पैदा करेगा। सबका रहन-सहन लगभग अेकसा होगा। यह हालत नहीं रहेगी कि अेक करोड़पति है और दूसरा भिखारी! वैश्यका धन प्रजाका माना जायगा। ये तीनों ताकतें सिर्फ समाजकी सेवामें लगाअी जायेंगी। सब शूद्र ही माने जायँगे, अिसलिअे अूँच-नीचका भाव न होगा। अिसीके साथ साथ वर्ण-धर्म फिर अूँचा अुठेगा।

वर्ण-धर्ममें पीढ़ी दर पीढ़ीकी बात है ही। अुसके बिना अच्छा बन्दोबस्त हो नहीं सकता। अिसलिअे विद्या पढ़ानेवालेकी औलाद अुसी धर्मको पालेगी। सबके सब ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकते। हो जायँ तो कोअी हर्ज नहीं। और ब्रह्मज्ञानी होना तो सेवामें कमाल हासिल करना ही है। अुसमें घमण्ड अथवा खुदगरजीकी बू तक नहीं हो सकती। और अैसे ब्रह्मज्ञानियोंकी फसल अच्छी हो, तो वर्ण-व्यवस्था फिरसे कायम हो सकती है।

अब दो बातें रोटी-बेटी व्यवहारके बारेमें।

अूपरका हिस्सा जिसने ठीक तरह समझ लिया है, अुसके लिअे तो असलमें और कुछ लिखना बाकी रहता ही नहीं। काअी किसीके साथ रोटी खानेको या चाहे जिसे अपनी लड़की दे डालनेको बँधा नहीं है। अिसलिअे कुदरती तौरपर सब अपने जैसे रीतिरिवाज और आदतवालोंके साथ रोटी-बेटी व्यवहार रखेंगे। मैंने अभी अेक ही वर्णके बारेमें सोचा

* देखो, पुस्तकके आखिरमें परिशिष्टमें।

है और हरिजन अुसके बाहर नहीं; अिसलिअे अितना कहना काफ़ी है कि अपनी सहूलियतके हिसाबसे सब अपने रिश्ते ढूँढ लेंगे और जहाँ अुनकी आत्मा संतुष्ट होगी, वहीं खायेंगे बैठेंगे। छुआछूत चली जाय तो फिर अिस बारेमें ज्यादा कहने-करनेको कुछ नहीं रह जाता।

अखीरमें बहुत बार कही हुअी बात फिर दुहरा दूँ। अिस वर्ण-व्यवस्थाके प्रश्नका अछूतपन मिटानेके साथ सीधा सम्बन्ध नहीं। अछूतपन मिटाना हर हिन्दूका परम धर्म है। अिसीके लिअे हरिजन• सेवक-संघकी हस्ती है। अुसने अपने क्षेत्रकी मर्यादा बाँधी है। अुस मर्यादाके बाँधनेमें मेरा खास हाथ है।

वर्ण-धर्मके विचार अभी तो मेरे निजी विचार हैं। अुन्हें जो न माने, अुसे भी अछूतपन दूर करनेसे न चूकना चाहिये। मैं अुसमें विशेष करके भाग लेता हूँ, अिस खयालसे किसीको भड़कनेकी ज़रूरत नहीं। वर्ण-व्यवस्थाके मेरे विचारोंको हिन्दू जाति न माने, तो वे मेरे पास ही रह जायेंगे। मैं अुन्हें जबरदस्ती नहीं मनवा सकता, मनवानेकी अिच्छा भी नहीं रखता। ये विचार हिन्दू धर्मके खिलाफ होंगे, तो मैं खुद हिन्दू जातिमेंसे निकल जाअूँगा। लेकिन अछूतपन मिटानेकी प्रतिज्ञाका पालन करना तो सब हिन्दुओंका अेकसा धर्म है। मैं अपना अेक भी विचार छिपाकर किसीको दगा देना नहीं चाहता। वर्ण-व्यवस्थाका सवाल अछूतपनके साथ टेढ़ा-मेढ़ा सम्बन्ध रखता है, अिसलिअे मैं समझ सकता हूँ कि मेरे साथी और दूसरे अिस बारेमें मेरे विचार जानना चाहते होंगे। अिसी कारण मुझे अपने ये विचार खोलकर बताने पड़ते हैं। मगर अिन विचारोंसे किसीको सोचविचार या परेशानीमें पड़नेकी जरा भी ज़रूरत नहीं। धर्मके सवालमें व्यक्ति कुछ भी नहीं। वे आते रहेंगे और जाते रहेंगे। धर्म सदा रहनेवाला है। वह चलता ही रहेगा। अुसके बारेमें सदा ही कल्पनाअें होती रही हैं और होती रहेंगी। जिस तरह अीश्वरके गुणोंका पार नहीं, वैसे ही धर्मकी मर्यादाका भी पार नहीं। अुसे सब तरहसे किसीने नहीं जाना। सब जितना जानते हैं, अुतना पालन करते रहें, तो धर्मकी गाड़ी आगे चलती रहेगी। अितना समझकर मुझे अलग रखकर ही सब अपने अपने लिअे धर्मकी खोज करें। अिसकी खोज

करनेकी शर्तें दुनिया भरमें जाहिर हैं। अुन शर्तोंका पालन करनेवाले ही धर्मको किसी हद तक पहचानेंगे। सारे ज्ञानके पीछे अुसे पानेके नियम होते हैं। अुन्हींमेंसे मेहनत अेक है। धर्मकी खोजके लिअे सबसे ज़रूरी मेहनत है। और अिसीलिअे अुसकी खोजकी शुरूआतमें ही अनुभवियोंने यम-नियमोंका पालन बताया है।

'हरिजनबन्धु', ता० १९-३-'३३

११

आज तो अेक ही वर्ण है

('चिट्ठी-पत्रीमेंसे' अेक सवाल)

"अेक साथीने पूछा, आप कहते हैं कि आप वर्ण-धर्मको रखना चाहते हैं। फिर भी आप यह कैसे कहते हैं कि हम सब शूद्र हैं और अेक ही वर्ण हैं? अिसके सिवा, हम तो आज शूद्र कहलानेके लायक भी नहीं हैं। अिसका क्या होगा?"

अु०—आज अगर हमें सब हिन्दुओंके वर्णके हिसाबसे हिस्से बनाने ही हों, तो अकेले शूद्र वर्णके सिवा दूसरा कोअी भी वर्ण नहीं। और अिस सच्ची हालतको मान लेनेमें ही हिन्दू जातिका भला है। अितना मान लेनेसे अूँच-नीच वर्णके भेद अपने आप मिट जायँगे। अैसा नहीं है कि अिसके बाद कोअी ब्रह्मविद्या या दूसरी विद्या हासिल करनेकी कोशिश नहीं करेगा। मगर अिसका मतलब अितना तो है ही कि सब खुद मेहनत करके, हाथपैर हिलाकर रोटी पैदा करेंगे और अपनी दूसरी शक्तियाँ आम लोगोंकी भलाअीके काममें लगावेंगे। यह सच है कि अिस तरहका वर्ण-धर्म अमलमें आया हुआ हमने देखा नहीं; पर अिसमें मुझे कोअी शक नहीं कि हिन्दू धर्मके सतयुगमें अिस वर्ण-धर्मका पालन हुआ होगा।

'हरिजनबन्धु', ता० २६-३-'३३

१२

वर्ण-व्यवस्थाका रहस्य

वर्ण-व्यवस्थाका मेरा लेख पढ़कर अेक विद्यार्थी लिखता है:—

"क्या आप जन्मसे वर्णको मानते हैं? क्या आपका यह कहना है कि ब्राह्मणके घर पैदा हुअे मनुष्यका काम ब्राह्मणका ही होगा और अिसी तरह भंगीके यहाँ जन्मा हुआ आदमी भंगीका ही काम करेगा? अिसका मतलब तो यह हुआ कि जन्मका भंगी वेद और शास्त्र नहीं पढ़ सकता और वेदशास्त्रका पण्डित होकर भी वह ब्राह्मणका दर्जा नहीं पा सकता। आपके कहनेके माफिक तो हरअेक प्राणी जन्मसे ही अैसा बन्धन लेकर पैदा होता है कि अुसी बन्धनमें रहकर खास काम करके अुसे सन्तुष्ट रहना चाहिये और अुसीमें अुसे मोक्ष पानेकी कोशिश करना चाहिये। अिस अुसूलको मजबूत करना व्यक्तिवादकी हत्या करनेके बराबर है और व्यक्तिकी काम करनेकी और विचार करनेकी आज़ादीको छीन लेना है।

"अिन्सानी कमज़ोरियों या मानवी दुर्बलताओंसे भरे अिस संसारमें जानबूझकर वर्ण विभाग रखनेसे समय पाकर जातपाँतकी बुराअियाँ ज़रूर पैदा हो जायेंगी। आजकलकी पद्धतिके हिसाबसे तो हर शख्सको काम करने और सोचनेकी आज़ादी होनी चाहिये। व्यक्तिकी आज़ादीका यही मूल मंत्र है। हर आदमीको दुनियामें सेवा या कर्तव्यकी खातिर अपनी मर्जीके मुताबिक कोअी भी अच्छा काम करने देनेमें समाज, धर्म या किसी व्यक्तिको कौनसी बाधा होनी चाहिये? हर व्यक्तिको — फिर अुसका जन्म कहीं भी क्यों न हुआ हो — जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह ज्ञान, शक्ति, धन और सेवामेंसे अेकको या सबको साधे। जीवनकी पूर्णताके लिअे चारों ज़रूरी हैं। अिस जीवनकी पूर्णताको समझने और अुसके अनुसार फ़र्ज़ अदा करनेमें ही धर्मकी सच्ची सेवा है। आप अिस बारेमें अपने विचार ज्यादा साफ करें तो अच्छा हो।"

हाँ, मैं जन्मसे होनेवाला वर्णका बँटवारा मानता हूँ। अगर अैसा न होता, तो वर्ण-व्यवस्थाका कुछ भी अर्थ नहीं होता। तो वर्ण-व्यवस्थाका जरा भी फायदा न रहता और वह निरा शब्दजाल रह जाता।

वर्णका बँटवारा कोअी अिन्सानकी बनाअी हुअी योजना नहीं। अिसकी जड़ तो कुदरतके कहिये या अीश्वरके कानूनमें है। कानूनका

पालन करना न करना मनुष्यके हाथमें है। अिसीलिअे मनुष्यके व्यक्तित्वको कोअी हानि नहीं होती। आग कहती है कि मुझे छुओगे तो जलोगे। हम आगकी बात न सुनें और व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर अमल करनेके लिअे आगको छुअें, तो हमें ज़रूर जलना पड़ेगा। अिसी तरह वर्ण-व्यवस्थाके नियमकी बात है। ऋषि-मुनियोंने तपस्या करके अपने ध्यानमें देखा कि वर्णका बँटवारा समाजकी बढ़तीके लिअे ज़रूरी है। और अिसीलिअे अुन्होंने समाजके हिस्से किये। अिसका अमल करना न करना हमारे हाथकी बात है। न करें तो कोअी बाँधकर मारनेवाला नहीं। पर क़ुदरत सजा देगी, तो अुसे कौन रोक सकेगा? या अुसे सजा कहें ही क्यों? वर्ण-विभागके नियमोंको न माननेका जो क़ुदरती परिणाम होगा, अुसे कौन रोक सकता है? अिस तरह वर्ण-विभागसे व्यक्तिका नुकसान हो ही नहीं सकता।

पर जन्मसिद्ध वर्ण कैसे? यह कोअी मेरी जेबमेंसे निकाली हुअी बात नहीं। वर्ण-विभागकी जड़में ही जन्म है। ब्राह्मणके नाममें ब्राह्मणपन है और वह अपनी औलादको ब्राह्मणपनके लिअे तैयार करेगा। अिसी तरह शूद्रकी बात है। शूद्र अपने लड़केको शूद्रपनके लिअे तैयार करेगा। अिसका मतलब यह नहीं कि शूद्र ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। वर्ण-व्यवस्थाका सम्बन्ध ही आजीविकाके साथ है। जिस वर्णमें जो पैदा हुआ है, वह अुसी वर्णके धंधेपर गुजर करेगा। हर वर्ण दूसरे वर्णकी जानकारी ले, तो अिसमें कोअी हर्ज नहीं। अपनी अपनी तरक्क़ी और आज़ादीकी रक्षाके लिअे सबमें चारों वर्णोंके मामूली गुण होने चाहियें। लेकिन हर आदमीमें अपने वर्णका गुण विशेष करके मालूम पड़ना चाहिये।

वर्ण-व्यवस्थामें दुनियावी लालचको हदमें रखनेकी बात है, ताकि आत्माके विकासके लिअे अधिक गुंजायश रह सके। दुनियावी चीजें और दुनियावी सुख पलभर रहनेवाली चीजें हैं। मनुष्य अिन्हींको पानेमें फँसा रहे और अिन्हींको अपना ध्येय बनाले, तो आत्माका विचार नहीं कर सकता। अिसमें पुरुषार्थको किसी भी तरह आँच नहीं आती। मनुष्यको जब गुज़ारेके साधनकी तलाश नहीं करनी पड़ती, आजीविकाका साधन तैयार

ही हो, तब अुसकी सारी कोशिश सिर्फ आध्यात्मिक खोजके लिअे होती है। मुझे अैसा विश्वास हो गया है कि हिन्दू जातिने वर्ण-व्यवस्थाकी खोज करके अेक बड़ी भारी आध्यात्मिक खोज की है और आध्यात्मिक तरक्क़ीका सामान तैयार किया है। समयके फेरसे हम अिस चीजको भूल गये, वर्ण-व्यवस्था अव्यवस्थित हो गअी, वह छुआछूतमें खतम हो गअी, और रोटी-बेटी व्यवहारमें ही रह गअी। अुसमेंसे वर्णका संकर यानी दोग़लापन शुरू हुआ और पतन हुआ। हरअेक दूसरे वर्णका धन्धा करनेकी कोशिश करने लगे। ब्राह्मण लालची हो गये और अुन्होंने अपना ब्राह्मणका धर्म छोड़ दिया। 'दरियामें लगी आग बुझा कौन सकेगा'? नमक जब खारापन छोड़ दे, तो फिर खारापन रहेगा कहाँ? अिसीसे आज हिन्दू धर्मकी दुर्गति हुअी है।

'हरिजनबन्धु' ता० ९-४-'३३

१३

पाँच सवाल

वर्ण-धर्मके मेरे लेखके बारेमें एक भले आदमीने पाँच सवाल भेजे हैं:

"१. गुजारेके लिअे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्या काम करें?

२. सेवाके लिअे चारों वर्ण क्या क्या काम करें?

३. सेवाका काम और गुजारेका काम अेक ही हो या अलग अलग हो?

४. आपने लिखा है कि अिस वर्ण-धर्मका पालन फिरसे मुमकिन बनानेके लिअे सबको अपनी खुशीसे शूद्र बन जाना चाहिये, शूद्रका धर्म अपना लेना चाहिये। अगर शूद्रके अलावा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रका धर्म अपना लें, तो क्या अुनको अपना धर्म छोड़कर दूसरेका धर्म अपनानेका दोष नहीं लगेगा?

५. आपने लिखा है कि खुशकिस्मतीसे आज ब्रह्मको जाननेकी कोशिश करनेवाला अेक छोटा-सा वर्ग मौजूद है, जिसके ज़रिये शुद्ध सनातन धर्म फिरसे अपना तेज प्रगट करके दुनियाको भलाअीका रास्ता बनायेगा। वह वर्ग कौनसा है?"

किसीको सवाल पूछनेसे मैं रोकना नहीं चाहता, पर अितना ज़रूर कहना चाहता हूँ कि कअी सवाल असली लेख पढ़नेसे हल हो जाते हैं। जिस लेखमें अुस विषयके अंदर आनेवाले सवालोंका जवाब न मिले, वह लेख निकम्मा हो सकता है। नीतिके बारेके लेखोंको अेक ही दफा पढ़कर नहीं छोड़ देना चाहिये। अैसे लेखोंको बार बार पढ़नेसे ही अुनके भीतरके सवाल अपने आप हल हो जाते हैं। पूछनेवालेसे मेरी प्रार्थना है कि वह वर्णाश्रम पर मेरा लेख पढ़ जाय, ताकि अुसे पता चले कि यहाँ मैं जो कुछ लिखूँगा, वह सब मेरे लेखमें मौजूद है। मेरी यह सूचना सबके लिअे है। पूछनेवाला यह न समझे कि खास तौरपर अुसीके लिअे है। हममें पढ़नेके बाद मनन करनेकी आदत जाती रही, अिस-लिअे हम पराधीन-जैसे बन गये हैं; और हर बातमें दूसरेकी राय जानना चाहते हैं। किसी भी आदमीके बारेमें यह हालत पैदा होना दयाजनक बात है। अुसूलमेंसे छोटा अुसूल निकालनेकी शक्ति हममें आ जानी चाहिये। थोड़ेसे अभ्याससे यह शक्ति मिल जाती है।

अब प्रश्नोंका अुत्तर :

१. ब्राह्मण ब्रह्मज्ञान देगा, क्षत्रिय रक्षा करेगा, वैश्य व्यापार वगैरासे धन कमायेगा, शूद्र सेवा करेगा और सब अपना अपना कर्त्तव्य करके अपनी रोजी कमायेंगे, लेकिन गुज़ारेसे ज्यादा नहीं कमायेंगे।

२. वर्ण अेक धर्म है, अधिकार नहीं। अिसलिअे वर्ण सिर्फ सेवाके लिअे ही हो सकता है, स्वार्थके लिअे नहीं हो सकता। अिस तरह न कोअी अूँचा है, न कोअी नीचा। जो ज्ञानी अपनेको अूँचा माने, वह मूर्खसे भी बुरा है। वह वर्णसे गिर जाता है। यहाँ यह भी समझना ज़रूरी है कि वर्ण-धर्ममें कोअी अैसी बात नहीं कि शूद्र ज्ञान न हासिल करे या रक्षाका काम न करे। हाँ, शूद्र ज्ञान देकर या रक्षाका काम करके रोजी न कमाये। या क्षत्रिय सेवा न करे, अैसी बात भी नहीं; लेकिन सेवासे रोटी न कमाये। अिस सीधे सहज धर्मका सब पालन करें, तो जो झगड़े आज होते हैं, जो रस्साकशी अेक दूसरेके साथ होती है, धन अिकट्ठा करनेके लिअे जो होड़ चलती है, जो झूठ चलती है, जो कलह और लड़ाअी मचती है, वह सब मिट जाय। अिस नीतिका पालन सारी दुनिया करे

या न करे, सब हिन्दू करें या न करें, जितने करेंगे अुतना संसारका लाभ होगा। मेरा यह विश्वास बढ़ता जाता है कि वर्ण-धर्मसे ही संसारका अुद्धार होगा। वर्ण-धर्मका सच्चा अर्थ सेवा धर्म है। जो कुछ किया जाय, वह सेवा भावसे किया जाय। सेवामें सौदेकी गुंजायश नहीं।

अब रही बात शरीर-श्रमकी। जहाँ तक मैंने गीताको समझा है, मुझे लगता है कि गीतामें यज्ञके कअी अर्थ किये गये हैं। अुनमें शरीर-श्रम भी आ जाता है। समाजकी भलाअी या लोक संग्रहके लिअे यज्ञके तौरपर शरीरसे मेहनत करना भी सब वर्णोंका धर्म है। अिस यज्ञसे कोअी नहीं बच सकता, क्योंकि मेहनतके बिना शरीरका निभाव भी नहीं हो सकता। जो यह मेहनत या श्रम रूपी यज्ञ नहीं करता, वह चोरी करता है। यह कहना कि मेहनत शूद्रका ही काम है, धर्मको न जानना है। परिचर्याका अर्थ शरीर-श्रम नहीं। जो आदमी अपने बरतन माँजता है, वह मेहनत करता है, परिचर्या नहीं करता। जो आदमी जीविकाके लिअे दरवाजेपर बैठकर चौकीदारी करता है, वह मेहनत नहीं करता, परिचर्या ज़रूर करता है।

३. तीसरे प्रश्नका अुत्तर देनेकी अब आवश्यकता नहीं रहती।

४. यह सवाल करते वक्त पूछनेवाला भूल गया है कि मेरा कहना यह है कि आज वर्ण-धर्म करीब करीब मिट गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंने कभीसे अपना वर्ण छोड़ दिया है। वे अपना धर्म छोड़कर अधिकार ले बैठे हैं। दोष तो हो चुका है। लेकिन शूद्रोंका धर्म अपनाकर वर्णसे गिरे हुअे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अुस दोषसे बरी होनेकी शुरूआत कर सकते हैं। शूद्रको हल्का मानना अिनका धर्म कभी था ही नहीं।

५. जो लोग भागवत धर्म यानी भक्ति मार्गका दिलसे अमल करते हैं, अीश्वरको .खुश रखनेकी खातिर सिर्फ गुज़ारा लेकर लोगोंकी सेवा करते हैं, वे अपने अमलसे ब्रह्मज्ञान देते हैं। अिनमें विद्वान भी हैं, और अविद्वान भी। ये अपना काम किसीको बतानेके लिअे नहीं करते। अिन सबके नाम मैं नहीं जानता। मेरा यह विश्वास है कि अैसे लोग मौजूद हैं। हाँ, अिनकी तादाद थोड़ी है।

'हरिजनबन्धु' १६–४–'३३

१४

विरोधाभास

अेक भाअी मेरे लेखोंका ध्यानसे अध्ययन करते हैं। मैंने हालमें अेक वर्णके दूसरे वर्णके साथके रोटी-बेटी व्यवहारके बारेमें जो कुछ लिखा है, अुसके साथ मेरे कअी बरस पहलेके अिस विषयके लेखोंका मेल बैठानेमें अुन्हें मुश्किल पड़ती है।

१९२१ के अक्तूबरमें मैंने हिन्दू धर्मके बारेमें अेक लेख लिखा था। अुसमेंसे अिन भाअीने जो अुद्धरण दिया है, अुसमेंसे अिनका निकाला हुआ हिस्सा छोड़कर बाकी ज्यों का त्यों यहाँ देता हूँ :

"अिस तरह हालाँ कि वर्णाश्रम धर्मको अेक वर्णके साथ दूसरेके रोटी-बेटी व्यवहारसे धक्का नहीं लगता, फिर भी हिन्दू धर्म अलग अलग वर्णोंके बीच रोटी-बेटी व्यवहारको आग्रहके साथ नापसन्द करता है। हिन्दू धर्म संयमकी आखिरी हद तक पहुँच सका है। यह धर्म आत्माके मोक्ष या छुटकारेके लिअे देहका दमन करनेके लिअे कहता है। अेक मर्यादित वर्गमेंसे अपने घरके लिअे लड़की पसन्द करनेकी विधि भी भारी संयमके सिवा और क्या ज़ाहिर करती है? . . . आत्माकी जल्दी तरक्की करनेके लिअे अेक वर्णके साथ दूसरेके रोटी-बेटी व्यवहारकी मनाअी ज़रूरी चीज़ है।"

अुसके बाद पिछले ४ नवम्बरको अखबारमें भेजे हुअे मेरे लेखमेंसे यह भाअी जो अुतारा देते हैं, वह भी अुनके निकाले हुअे हिस्सेको छोड़कर देता हूँ :

"अेक वर्णके साथ दूसरेके रोटी-बेटी व्यवहारकी मनाअी हिन्दू धर्मका अंग नहीं, वह समाजका अेक पुराना रिवाज है। शायद जब हिन्दू धर्मकी गिरी हालत होगी, तब वह घुस गया होगा। . . . आज ये दोनों मनाअियाँ हिन्दू समाजको कमजोर बना रही हैं; और अिनपर जोर देनेसे आम लोगोंका मन जीवनके विकासके लिअे ज़रूरी

मूल तत्वोंपर डटे रहनेके बजाय अुलटे रास्ते चल पड़ा है। . . . खान-पान और ब्याह-शादीकी पाबन्दियाँ हिन्दू समाजकी तरक्कीको रोकती हैं।"

अिन अुतारोंको बेलाग होकर पढ़नेसे मुझे अिन दोनोंके बीच कोअी भी विरोध नहीं जान पड़ता; खासकर ये लेख पूरे पढ़े जायँ, तो विरोधकी झलक भी न दिखाअी दे। १९२१ के लेखमें मैंने हिन्दू धर्मकी छोटीसे छोटी रूपरेखा दी थी। पिछले ४ नवम्बरको मुझे अनगिनत जातपाँतों और अुनकी पाबन्दियोंपर विचार करना था। आश्रममें जैसा रहनसहन आज है, वैसा ही १९२१ में भी था। अिस तरह मेरे अमलमें तो कोअी फर्क पड़ा ही नहीं। अब भी मैं मानता हूँ कि रोटी-बेटी व्यवहारपर खुशीसे लगाअी हुअी रोकमें संयम है। १९२१का लेख आज लिखूँ तो शायद अेक शब्द बदलूँ। 'निषेध' या मनाअी शब्दके बदले अिसी लेखमें कुछ लकीरोंसे पहले काममें लाये हुअे शब्द फिर दुहराअूँ और कहूँ कि 'आत्माके जल्दी विकास या तरक्कीके लिअे वर्ण-वर्णके बीच रोटी-बेटी व्यवहारकी खुशीसे की हुअी मनाअी ज़रूरी चीज है।'

४ नवम्बरके लेखमें मैंने जो कुछ लिखा है, अुसके होते हुअे भी मैं कहूँगा कि अेक वर्णका दूसरे वर्णके साथ रोटी-बेटी व्यवहार करना भाअीचारेकी भावना बढ़ाने या अछूतपन मिटानेके लिअे जरा भी ज़रूरी नहीं। पर अिसके साथ ही, अिसमें भी शक नहीं कि बाहरसे दूसरेकी लगाअी हुअी पाबन्दी समाजके विकासको रोकती है। और अिन पाबन्दियोंका सम्बन्ध वर्ण-धर्मके साथ मानना आत्माकी मुक्तिमें रुकावट डालता है। अैसा हो तो वर्ण धर्मके लिअे बोझ बन जाय।

पर अितना कहनेके बाद मेरे लेखोंके अिस मेहनती विद्यार्थीसे और अिसी तरह अुनमें रस लेनेवाले दूसरे लोगोंसे मैं कहना चाहता हूँ कि मुझे हमेशा अेक ही शकलमें दीखनेकी कोअी परवाह नहीं। सचाअीकी खोजमें मैंने बहुतसे विचार छोड़े हैं और बहुतसी नअी चीजें सीखी हैं। अुम्रसे मैं भले ही बूढ़ा हुआ हूँ, पर मुझे अैसा नहीं लगता कि मेरा भीतरी विकास रुका है या देहके जाने पर भी वह रुक जायगा। मुझे अेक ही बातकी

चिन्ता है और वह है हर वक्त सत्यनारायणकी वाणीपर अमल करनेकी तत्परता या मुस्तैदी। और अिसलिअे किसीको मेरे दो लेखोंमें विरोध-जैसा जान पड़े और मेरी समझदारीपर भरोसा हो, तो अेक ही विषयपर मेरे दो लेखोंमेंसे पिछलेको प्रमाणभूत माने।

'हरिजनबन्धु,' ता० १६–४–'३३

१५

आयन्दा वर्णधर्म

'अेक सनातनी' लिखते हैं:

"हरिजनबन्धुके पिछले अंकमें अेक हरिजनको ध्यानमें रखकर आपने लिखा है: 'मेरे खयालमें वर्ण-धर्म मिट गया है और अुस धर्मका अुद्धार आपको वर्णके बाहर रखकर नहीं हो सकता। लेकिन मेरे जीते-जी अगर वर्ण-धर्मका अुद्धार होना है, तो जो आपका वर्ण माना जायगा, वही मेरा वर्ण समझना; क्योंकि मैं अपनेको खुशीसे बना हुआ हरिजन मानता हूँ।'

"यह तो साफ दीखता है कि वर्ण-धर्म मिट गया। यह बात भी गले अुतरती है कि रोटी-बेटी व्यवहारकी मनाअीसे और छुआछूतकी हठ रखनेसे वर्ण-धर्म बचता नहीं और टिकता भी नहीं। लेकिन अिस बारेमें मनमें शंका रहा करती है कि अब सच्चे वर्ण-धर्मका फिरसे अुद्धार होगा या नहीं। जब फिर अुद्धार होगा, तब करोड़ों हिन्दुओंमेंसे हरअेकका वर्ण कौन तय करेगा? किन तत्वों पर यह तय होगा? और यह बात किन तत्वोंपर और किसके हाथों तय होगी कि सैकड़ों जातियों और हजारों धंधोंमेंसे कोअी अेक जाति या कोअी अेक धन्धा किसी अेक वर्णके पेटमें जायगा? क्या आपको लगता है कि वर्ण-व्यवस्था फिरसे चालू करने जैसी शक्ति और संगठन अब किसी भी समाजमें पैदा होगा? या आप यह समझते हैं कि रूस-जैसी हुकूमत अिसे तय कर देगी? कृपा करके अिन सवालोंका विस्तारसे जवाब दीजिये, ताकि मेरे-जैसा सनातनी आपके विचार समझ सके।"

अिन सवालोंका सीधा जवाब देना कठिन है। कोअी तीनों कालकी बात जाननेवाला ही दे सकता है। मेरे लिअे वर्तमानकी जानकारी और अुसके अनुसार अमल करना काफ़ी है। 'काल करे सो आज कर, आज करे सो अब, पलमें परलय होयगी, बहुरि करेगो कब?' यह नास्तिक आस्तिक दोनों दिलसे गा सकते हैं। नास्तिकका लाभ 'खाओ, पिओ और मौज अुड़ाओ'में खत्म हो जाता है। आस्तिकका फायदा भगवानकी भक्तिमें याने मिले हुअे फ़र्ज़को दिलोजानसे अदा करनेमें खत्म होता है। मैं अपनेको आस्तिक मानता हूँ और आजका लाभ लेनेमें ही सफलता समझता हूँ। आज जो करूँगा वह कल भरूँगा, यानी यह यकीन है कि भविष्य वैसा ही होगा। अिसलिअे मुझे अिसकी फिक्र नहीं होती कि वर्ण-धर्मका आगे क्या होगा। अिसकी चिन्ता न करनेकी सलाह मैं 'अेक सनातनी'को भी देता हूँ। जो लोग मेरे-जैसे वर्ण-धर्मको मानते हैं और मेरी व्याख्याको स्वीकारते हैं, वे अपना रहन-सहन अुसी तरहका बनायें तो समझा जायगा कि अुन्होंने वर्ण सम्बन्धी अपने धर्मका पालन किया।

फिर, अेक और बात भी ध्यानमें रखने लायक है। किसी भी धर्मके मूल सिद्धान्त व्यापक होने लायक होने चाहियें। जिनमें अैसा गुण न हो, वे सिद्धान्तके तौरपर नहीं माने जा सकते। अगर वर्ण-धर्म अैसा अुसूल न हो, तो अुसकी पैदायश खास समय, जगह और संयोगोंमें होनी चाहिये और अिनमेंसे अेकके बदलनेसे भी वह व्यवस्था बदल जायगी। वर्ण-व्यवस्था अैसी क्षणजीवी हो, तो अिसका कुछ भी विचार नहीं किया जा सकता कि वह रहे या न रहे। लेकिन मेरी व्याख्याके वर्ण-धर्मको मैं सब जगह फैला हुआ अुसूल मानता हूँ। अुसके अमलपर मनुष्य-समाजकी हस्तीका दारमदार है। अगर मेरे खयालमें कुछ भी सार होगा, तो आगे चलकर वर्ण-धर्म फैलकर रहेगा; फिर भले ही वह किसी भी नामसे पहचाना जाय। वर्ण-धर्मका मतलब यही है कि हर अिन्सान अपने बापदादेके गुजरके साधनसे सन्तुष्ट रहे। अिस योजनाकी जड़में अहिंसा है, अीश्वरके क़ानूनकी जानकारी है, शुद्ध अर्थ-शास्त्र है, अिन्सानियत है। अिस वर्ण-धर्मपर अमल न

हुआ, तो जैसी कभी नहीं हुअी वैसी खानाजंगी या गृह-युद्ध होनेवाला है। जैसे जैसे करोड़ोंमें जागृति आयेगी, वैसे वैसे सब धनवान बनना चाहेंगे, सब बड़े बनना चाहेंगे, नीचे माने जानेवाले धन्धे कोअी न करना चाहेंगे और अूँच-नीचका खयाल ज्यादा ज्यादा फैलेगा। मुझे तो लगता है कि अिसका नतीजा आपसकी मारकाटके सिवा और कुछ न होगा।

लेकिन अिन्सानके स्वभावमें ही अपना बचाव करनेका गुण बैठा हुआ है, अिसलिअे मनुष्य वर्ण-धर्मका आसरा लेकर बच जायगा। अपना अपना खानदानी धन्धा करके, किसी भी धन्धेको अूँचा या नीचा माने बिना, सब अपना जीवन बितायेंगे। अैसा होने पर कोअी ब्राह्मण, क्षत्रिय वगैरा नामसे न पहचाना जाकर किसी दूसरे नामसे जाना जाय, तो अुसकी चिन्ता न होनी चाहिये। वर्ण चारके बजाय दो भी हो सकते हैं और चारसे ज्यादा भी हो सकते हैं। अितना साफ है कि वर्णके बड़े कानूनपर चलकर हम पूँजीवाद और मज़दूरवाद वगैराके झगड़ेसे बच जाते हैं। अैसी व्यवस्थामें अेक किनारे खूब लालच, खूब दौलत और खूब घमण्ड न होगा; और दूसरे किनारे लाचारी, कंगाली और दीनता न होगी। सब कोअी मिल कर रहेंगे और कोअी किसीको अूँचा या नीचा न मानेगा।

अितना लिखनेके बाद अपनी कल्पनाके घोड़ेपर बैठकर थोड़ी सैर करूँ। अगर कोअी वर्ण-व्यवस्थाको बनानेका काम मुझे सौंप जाय और मैं हिन्दुस्तानमें रहूँ, तो ब्राह्मणोंसे शुरूआत करूँ। वे सचमुच अनुभवज्ञान और अुसकी बुनियादपर खड़े होनेवाले आचारके रक्षक होंगे और अिसलिअे दूसरे वर्णोंकी अुनसे पट जायगी। कारण, अुनका अनुभव स्वयंसिद्ध होनेसे सब अपने आप अुनके पीछे चलेंगे और अुनमें परम्परागत होशियारी भी होगी। यह सवाल नहीं रहेगा कि ब्राह्मण कौन है। आजके हरिजन कहलानेवालेको सब ब्राह्मणके तौरपर मानेंगे और ब्राह्मण कहलानेवाला शूद्र कहलानेमें नहीं झिझकेगा। मैंने जिस जमानेकी कल्पना की है, अुसमें कोअी अड़चन पैदा न होगी; क्योंकि अुस जमानेमें अूँच-नीचकी भावना जड़से मिट गअी होगी और सब अपने अपने घरका धन्धा करते होंगे और अिस तरह सब अपनी अपनी जगह लग गये होंगे।

कल्पनाके घोड़े पर की हुआी सैरका लम्बा-चौड़ा बयान करनेमें बहुत सार नहीं होता। अिसलिअे अितना बयान करके खत्म करता हूँ, जिससे रास्ता दीख जाय। लेकिन मेरे अिस लेखसे अितना सार तो निकलना चाहिये कि चूँकि वर्ण-धर्मको अहिंसक माना है, अिसलिअे अुसमें राज-दण्ड या जब्रकी गुंजायश तो है ही नहीं। अिन्सानके स्वभावमें वर्ण-धर्म होगा, तो अुसीसे अुसका अुद्धार हो जायगा। अगर यह मनुष्य स्वभावके खिलाफ होगा, तो ठीक ही है कि यह आज मिट गया है। यहाँ अिन्सानसे मतलब पशु जातिका अेक खास जानवर नहीं, बल्कि वह जिसमेंसे पशुपन दिन दिन कम होता जा रहा है और जो बेहोशीसे निकलकर आत्माको पहचाननेवाला बन गया है। अिन्सान आत्माको पहचाननेके लिअे बनाया गया है और आत्माके रूपमें अेक है। अिसलिअे वह किसी न किसी दिन अूँच-नीचके झगड़ेमेंसे निकलकर अेकता बढ़ानेवाली 'वर्ण-व्यवस्थाको अपने आप अपनायेगा।

'हरिजनबन्धु' ता० १-१०-'३३

१६

सच्चा ब्राह्मणपन

अेक बंगाली प्रोफेसरने लम्बा खत लिखा है। अुसमेंसे नीचेका हिस्सा देता हूँ :—

"आपको यह जानकर दुःख होगा कि देशके कितने ही भागोंमें अछूतपन मिटानेकी हलचल रास्तेसे हट गअी है और अुसने सिर्फ़ ब्राह्मणपन और अुनके आदर्शोंके खिलाफ़ नीच और हिंसक प्रचारकी सूरत अख्तियार कर ली है। ब्राह्मण जमातको लोगोंकी आँखोंमें गिरानेके लिअे आधी व पूरी झूठ जानबूझ-कर फैलाअी जाती है और लोगोंको भरमाया जाता है। क्या अछूतपनकी प्रथा अकेले ब्राह्मणोंमें ही है? क्या दूसरे वर्णोंके हिन्दू भी अुतने ही गुनहगार नहीं? मान लीजिये कि शास्त्र ब्राह्मणोंके बनाये हुअे हैं; पर अैसा प्रमाण कहाँ है कि आज जिस तरहका बेरहम अछूतपन हिन्दुस्तानके कुछ हिस्सोंमें

पाला जाता है, अुसके लिअे शास्त्रकी आज्ञा है ? . . . क्या यह सच नहीं है कि आजकी अछूतपन दूर करनेकी हलचलको सफल बनानेमें ब्राह्मणोंने बहुत ही बड़ा हिस्सा लिया है । क्या यह भी सच नहीं कि बड़ी धारासभा या केन्द्रीय असेम्बलीके जिन मेम्बरोंने हरिजन मन्दिर-प्रवेश बिलमें बाधा डाली, अुनमेंसे ज्यादातर अब्राह्मण थे ? फिर किस लिअे ब्राह्मणों पर टूट पड़ना चाहिये ? वे तो अछूतपनके शापसे पैदा होनेवाली हालतकी गम्भीरताको और लोगोंसे ज्यादा समझते हैं । ”

देशमें अछूतपन दूर करनेका आन्दोलन शुरू हुआ, अुसके बहुत पहलेसे ब्राह्मणोंके खिलाफ हलचल शुरू हो गयी थी, और कअी सालसे चल रही है । अिस आन्दोलनको चलानेवाले अखबारोंके सिवा और कहीं भी मैंने ब्राह्मणपनके खिलाफ़ हिंसक या अहिंसक हमले हुअे देखे नहीं । हरिजनसेवक संघका अैसे आक्षेपोंके साथ कोअी सरोकार नहीं । यह बिलकुल सच है, जैसा कि लेखकने कहा है, कि अगर मुझे पता चले कि अछूतपन मिटानेकी हलचल अपने रास्तेसे हटकर ब्राह्मणपनके विरुद्ध हीन और हिंसक आक्षेपकी सूरत अख्तियार कर चुकी है, तो मुझे दुःख होगा । अिसलिअे मैंने अिस लेखकको लिखा है कि अुन्होंने जो भारी बात कही है, अुसके समर्थनमें अुनके पास जो भी सबूत हों वे मेरे पास भेज दें । मगर अिस खतके सिलसिलेमें मैं ब्राह्मणपन और ब्राह्मणोंके बारेमें अपनी राय दोहरा देता हूँ ।

मैं मानता हूँ कि ब्राह्मणपनका मतलब है ब्रह्मका दर्शन करानेवाला शुद्ध ज्ञान । मेरी यह राय न हो तो मैं खुद हिन्दू नाम छोड़ दूँ । मगर मनुष्यसमाजके दूसरे लोगोंके साथ साथ सब ब्राह्मणोंमें भी सच्चा ब्राह्मणपन नहीं रहा । फिर भी मुझे मानना पड़ता है कि जगतके अिन तमाम वर्गोंमें ज्ञानकी यानी सचाअीकी खोजमें सब कुछ कुर्बान करनेवालोंमें ज्यादासे ज्यादा ब्राह्मण ही मिलेंगे । हिन्दूधर्मके सिवा मैंने अेक भी दूसरा धर्म नहीं देखा जिसमें सिर्फ ब्रह्मज्ञानके खातिर खुशीसे फकीर बनकर रहनेवाला अेक अलग वर्ग पीढ़ी दर पीढ़ी चला आता हो । ब्राह्मणोंने अपने लिअे जो आदर्श ठहराया था, अुसे शोभा देनेवाला जीवन वे कायम न रख सके । अिसमें अुनका कसूर नहीं । अुनकी कमीसे अितना ही साबित होता है कि वे और अिन्सानोंके

जैसे ही गिरावटके लायक़ थे। अिसीसे हम धर्मशास्त्रके नामसे पहचाने जानेवाले ग्रंथोंमें सड़ाँध घुसी हुअी देखते हैं। अिसीसे हम यह दुखदायी दृश्य देखते हैं कि जिन ब्राह्मणोंने अपने लिअे निहायत बेगरज कायदे बनाये हैं, अुन्हींने अपनी औलादके लिअे शास्त्रकी स्वार्थी आज्ञाअें रची हैं। लेकिन सड़ाँधके खिलाफ़ और स्वार्थसे घुसेड़ी हुअी बादकी बातोंके खिलाफ बलवा करनेवाले भी ब्राह्मण ही थे। अुन्हींने बार बार अपने और समाजके पाप धो डालनेकी कोशिशें की हैं। मैं मंजूर करता हूँ कि मेरे मनमें ब्राह्मणपनके लिअे भारीसे भारी पूज्य भाव है और ब्राह्मणोंके लिअे अटल अिज्जत है। और यह देखकर मुझे दुःख होता है कि ब्राह्मण कहलानेवाले लोग अिस सुधारके आन्दोलनके खिलाफ धांधली मचा रहे हैं और अपनी शक्तियाँ विरोधी पक्षमें लगा रहे हैं। फिर भी अेक बातसे मुझे तसल्ली होती है और हरअेक निष्पक्ष हिन्दूको तसल्ली होगी कि सुधारकी हलचलके नेताओंमें भी अैसे लोग हैं, जो जन्मसे ब्राह्मण होकर भी जन्मका जरा घमण्ड नहीं करते। अछूतपन मिटानेका काम करनेवाले सब सेवकोंकी गिनती की जाय, तो मुझे लगता है कि यह जान पड़ेगा कि किसी भी तरहका मेहनताना लिये बिना या सिर्फ पेट भर लेकर अपनी सारी ताकत अिस हलचलमें झोंक देनेवाले सेवकोंमें बड़ा भाग ब्राह्मणोंका है।

लेकिन मैं मानता हूँ कि ब्राह्मणोंकी अवनति हुअी है। अैसा न होता और वे अपने आदर्श तक पहुँच होते, तो हिन्दूधर्मकी आज जो अवनति हुअी है, वह न हुअी होती। यह कहना कि ब्राह्मणोंने शुद्ध-जीवन रखा है, फिर भी हिन्दूधर्म आज अिस हालतमें आ पड़ा है, अेक दूसरीसे अुलटी बात समझी जायगी। अैसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि ब्राह्मणोंने खुद ही हमें सिखाया है कि वे खुद ब्रह्मज्ञानके सच्चे रखवाले हैं। और जहाँ ब्रह्मज्ञान है वहाँ डर नहीं, गरीबी नहीं, कंगाली नहीं, वहाँ अूँचनीचका भाव नहीं, वहाँ लालच, घमण्ड, फूट और लूट जैसी चीजें नहीं। ब्राह्मणपनकी अवनतिके साथ ही दूसरे वर्णके हिन्दू भी नीचे गिर गये। और मेरे मनमें ज़रा भी शक नहीं कि ब्राह्मणपन फिरसे जिन्दा न हुआ, तो हिन्दूधर्म मिट जायगा। और अछूत-

पनका जड़ मूलसे मिटना, मेरी समझसे, ब्राह्मणपनके यानी हिन्दूधर्मके फिरसे जिन्दा होनेकी अचूक कसौटी है। जैसे जैसे मैं हिन्दू धर्मशास्त्रोंका ज्यादा अध्ययन करता जाता हूँ और सभी तरहके ब्राह्मणोंके साथ चर्चा करता जाता हूँ, वैसे वैसे मेरा यह यकीन बढ़ता जाता है कि अछूतपन हिन्दू धर्मपर बड़ेसे बड़ा कलंक है। अिस यकीनकी बहुतसे विद्वान ब्राह्मणोंने ताअीद की है। अिन विद्वानोंका अिसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं है। वे सचाअीकी खोज करनेके लिअे जूझनेवाले हैं। अुन्हें अिसमें से कुछ मिलता नहीं; अपनी रायके लिअे अुन्होंने धन्यवाद तक स्वीकार नहीं किया।

पर आज ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोरे नाम ही रह गये हैं। जिस वर्णको में मानता हूँ, वह पूरी तरह संकर हो गया है। और पिछले अंकमें * वर्ण-धर्म पर अपने लेखमें कह गया हूँ कि मैं चाहता हूँ कि आज तमाम हिन्दू स्वेच्छासे शूद्र नाम धारण कर लें। ब्राह्मणपनमें रहनेवाली सचाअीका दुनियाको दर्शन कराने और वर्णधर्मका सच्चा स्वरूप जिंदा करनेका यह अेक ही रास्ता है। सब हिन्दुओंके शूद्र माने जानेसे ज्ञान, शक्ति और सम्पत्ति मिट नहीं जायगी, बल्कि वे सब अेक संप्रदायकी सेवामें काम न आकर सचाअी और मानव जातिकी सेवामें काम आयेंगी। कुछ भी हो, अछूतपनके खिलाफ लड़ाअी चलानेमें और अिस लड़ाअीमें अपनेको होम देनेमें मेरी महत्त्वाकांक्षा सारे मनुष्य समाजकी कायापलट देखने की है। यह मेरा सपना हो सकता है, सीपमें चाँदी देखने जैसा कोरा भ्रम भी हो सकता है। जब तक यह सपना चल रहा है, तब तक मेरे मनमें यह खाली भ्रम नहीं है। और रोमाँ रोलाँके शब्दोंमें कहूँ, तो 'जीत ध्येय तक पहुँचनेमें नहीं, बल्कि अुसके लिअे अथक साधना करनेमें है।'

'हरिजनबन्धु' ता० २६–४–'३३

* देखिये ४८वें पन्नेका लेख

१७

ब्राह्मण क्या करे ?

१

अेक महाराष्ट्री भाअी लिखते हैं :

"अेक अधेड़ अुम्रके भाअी, जिन्होंने कॉलेजकी पढ़ाअी की है और अभी बेकार हैं, मुझे लिखते हैं :

'दिन बहुत खराब आये हैं। मैं पढ़ा हुआ हूँ। शरीरसे मज़बूत हूँ। काम करनेकी मेरी शक्ति ज़रा भी कम नहीं हुअी है। फिर भी लगभग साल भर होने आया, कहीं रोज़गार नहीं मिलता। आजकल ब्राह्मण होना मानो पाप ही हो गया है। ब्राह्मण होनेके कारण ही नौकरी मिलना मुश्किल हो जाता है। आप लोग हरिजनोंका काम लेकर बैठे हैं। हरिजनोंको बेशक अूँचा अुठाअिये, पर ब्राह्मणोंको दबाना कहाँका न्याय है? आपको खयाल नहीं होगा कि बड़े कुटुम्बका खर्च चलाना कितना कठिन है। जहाँ नौकरी ढूँढ़िये, वहीं पूछते हैं — किस जातिके हो? ब्राह्मण बतायें तो फौरन पूछने-वालेकी आवाज बदल जाती है। क्या यह रवैया वाजिब है?'

"अैसे मौके पर क्या जवाब दिया जाय, कुछ सूझता नहीं; क्योंकि जवाब सिर्फ ठीक होना ही काफ़ी नहीं। अुससे लिखनेवालेको आश्वासन भी मिलना चाहिये। आप क्या आश्वासन देंगे?"

मैं आशा रखता हूँ कि जो अनुभव अिस ब्राह्मणको हुआ, वैसा बहुतोंको नहीं होता होगा। अिसमें शक नहीं कि अेकको भी नहीं होना चाहिये। जो लायक है, अुसे नौकरी मिलनी चाहिये। अिसमें जाति, वर्ण या धर्मका भेद न होना चाहिये। अिस देशमें जो अिस देशके हैं, अुन्हें नौकरी या धन्धा मिलना आसान होना चाहिये।

यह तो आदर्शकी बात हुअी। हमारे देशमें अूँचनीच वग़ैराके भावोंने जड़ जमा ली है। अिसलिअे गुणदोषकी जाँच करते वक़्त जाति, वर्ण, धर्म वग़ैरा की जाँच ज्यादा होती है। अिस कारण जहाँ ब्राह्मणको न

रखनेका आग्रह हो, वहाँ अुसे न रखा जाय तो अुसमें अचम्भेकी कोअी बात नहीं। हमारे पापके कारण, धर्ममें पैठी हुअी सड़ाँधके कारण, अशुभ बातें होती ही रहेंगी। अिसलिअे अिन्हें प्रायश्चित्तके तौरपर हमें सहन करना चाहिये।

लेकिन जो जन्मसे ब्राह्मण हैं और ब्राह्मणका धर्म पालना चाहते हैं, वे नौकरी क्यों ढूँढ़ें? ब्राह्मण होनेका दावा करनेवालेके लिअे तो लोगोंमें ब्रह्मज्ञान फैलाकर गुजारेके लिअे धर्मभावनावाले यजमानोंपर आधार रखना ही वाजिब है। नौकरी ढूँढ़नेवाले ब्राह्मणके लिअे सच्चा आश्वासन तो यही होगा कि वह अपना धर्म पाले। फिर अुसके लिअे निराशाका कारण ही नहीं रहेगा।

मैं अुम्मीद रखता हूँ कोअी यह कहकर मुझे बुरा न बतायेगा कि वर्ण धर्म मिट गया, अैसा कहनेवाला मैं आफतमें फँसनेपर वर्ण धर्मका आसरा कैसे लेता हूँ। कारण, वर्ण धर्मके मिट जानेका यह अर्थ नहीं कि किसीको अुसका पालन न करना चाहिये। वर्ण धर्मको माननेवालेके लिअे तो अपनी तरफसे अुस धर्मको पूरी तरह पालना ही ठीक है। अुक्त ब्राह्मण ब्राह्मण होनेका दावा करता है, अुससे यही मालूम होता है कि वह खुद वर्ण धर्मको मानता है। अिसलिअे मेरी तो यह सलाह है कि वह अुसी धर्म पर चले और नौकरीका लालच छोड़ दे।

अिस कठिन कालमें भी ब्राह्मणोंने व्यक्तिके नाते देशकी थोड़ी सेवा नहीं की है। दूसरोंके मुकाबले ब्राह्मणोंका त्याग ज़रूर अधिक है। लेकिन ब्राह्मणोंका अच्छेसे अच्छा त्याग तो नौकरी वगैरा सभी अर्थमात्रको छोड़ना है। ब्राह्मणके धर्मकी शान तो सिर्फ परमार्थमें ही है। ब्राह्मण अगर वर्ण धर्मका मर्म जानकर अुसके मुताबिक चले, तो वर्ण धर्मका फिर आसानीसे अुद्धार हो सकता है। अिसलिअे अुक्त ब्राह्मण और अुसके जैसी हालतवाले दूसरे ब्राह्मणोंको मेरी सलाह है कि वे ब्राह्मणका धर्म पालनेकी योग्यता पैदा करें, अुसके मुताबिक़ अपना बर्ताव रखें और अर्थलाभका लालच छोड़ दें।

'हरिजनबन्धु' ता० १०–९–'३३

२

(‘ब्राह्मण क्या करे?’) मेरे अिस लेखपरसे असली लिखनेवाले महाराष्ट्री भाअी दुबारा लिखते हैं :

“मुझे आदरके साथ बताना चाहिये कि ‘ब्राह्मण क्या करे?’ अिस शीर्षकसे आपने जो जवाब लिखा है, अुससे मेरा समाधान नहीं हुआ। मुझे पत्र लिखनेवाले भाअी आदर्श ब्राह्मण होनेका दावा करते ही नहीं। यह बात तो मिट नहीं सकती कि वे जातिसे ब्राह्मण हैं। मान लीजिये कि अुनकी जगह मैं ही हूँ। मुझे ब्राह्मणका धर्म खास तौरपर पालनेका अुत्साह नहीं। जन्मसे हिन्दू हूँ और हिन्दू ही रहना चाहता हूँ। जन्मसे ब्राह्मण होकर हिन्दू रहते हुअे मुझसे अब्राह्मण तो हुआ नहीं जायगा। मैं जानता हूँ कि हमारे यहाँ ब्राह्मणोंके हाथमें जब हुकूमत थी, तब धार्मिक प्रतिष्ठा और राजनीतिक असरके कारण ब्राह्मण अिधर अुधर जम गये। अंग्रेजी राज कायम होनेके बाद भी समय पाकर बुद्धिके जोरसे ब्राह्मण सरकारी नौकरियोंमें और बुद्धिजीवी धन्धोंमें आगे आये। यह सब मैं समझता हूँ। जब तक मैं यह समझता न था, तब तक मान लीजिये कि मैंने अपनी जातिके जवानोंकी शिक्षामें ही अपनी सारी कमाअी भी खर्च कर दी। आज मुझे अुसका पछतावा होता है। अिसके लिअे मैं प्रायश्चित्त करनेको भी तैयार हूँ। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि जहाँ मेहनत कम और कमाअी ज्यादा हो, अुन धन्धोंमें अब्राह्मणोंको ही ज्यादा जगह मिलनी चाहिये। पर मैं कितना ही प्रायश्चित्त करूँ, तब भी मुझे अपने बड़े कुटुम्बका पालन तो करना ही पड़ेगा। मैं दिनभर बेगार करूँ, पर मुझे डेढ़सौ-दोसौ रुपयेकी जरूरत है। तब मुझे क्या करना चाहिये? धर्म भावनावाले यजमान मुझे सम्हालनेके लिअे कहाँ तैयार हैं? और ब्रह्मज्ञानके प्रचारका धन्धा मैं किस तरह कर सकता हूँ? मैं तो मामूली नागरिक हूँ। मामूली आदमियोंको ब्रह्मज्ञानकी क्या पड़ी? वर्ण धर्म कायम हो, तो मैं जरूर खुश होअूँ। पर तब तक मेरे गुजारेका क्या हो? मैं ब्राह्मण होनेके कारण कोअी खास लाभ नहीं माँगता। ब्राह्मण होनेके ही कारण मुझे सरकारी या म्यूनिसिपैल्टी-जैसी सार्वजनिक संस्थाकी नौकरी न मिले या अिसमें मुश्किल पैदा हो, तो अिसका अिलाज क्या है? यह सब मैं अपने मित्रकी तरफसे नहीं लिख रहा हूँ। पर बहुतसे ब्राह्मण जो बात करते हैं, अुसका सार मैंने यहाँ दिया है। आप ठीक समझें तो अिस हालतकी चर्चा कीजिये।”

अिस खतपरसे बहुतसे प्रश्न अुठते हैं। अैसी बात नहीं कि ब्राह्मणको जो अड़चन होती है, वह दूसरोंको नहीं भोगनी पड़ती। आज किसी न किसी बहाने सभीको नौकरी मिलनेमें थोड़ी बहुत मुश्किल होती ही है। आज तक ब्राह्मणोंको नौकरी आसानीसे मिल सकी है। अब अैसा नहीं होता। अिसमें शक नहीं कि ब्राह्मणोंकी जो हालत आज हो गयी या होती दीखती है, वैसी थोड़े साल पहले औरोंकी थी। जहाँ जातियाँ होंगी, वहाँ अैसे चढ़ाव अुतार आते ही रहेंगे। अिसलिअे किसीको सन्तोष देनेवाला आश्वासन देना मुश्किल है।

यह विचारने लायक है कि अिस अड़चनकी जड़में अेक चीज है। नौकरीकी संख्या हमेशा मर्यादित ही रहेगी। समयके साथ अुनके लिअे अुम्मीदवारोंकी तादाद बढ़ती ही रहेगी। अिसलिअे सीधा रास्ता यही जान पड़ता है कि लोग नौकरी छोड़ना सीखें, दूसरे धन्धेकी तरफ़ मुड़ें और अुनकी योग्यता पैदा करें। अैसा फेरबदल करनेमें बीचके समयमें तकलीफ ज़रूर होगी, लेकिन फल अच्छा निकलेगा। दूसरे देशोंमें अैसा अनुभव हुआ है और जो लोग आज तक नौकरी करते थे, वे अब धन्धोंमें लग गये हैं।

दूसरी बात ध्यानमें रखनेकी यह है कि खर्च कम करना चाहिये, अपनी और कुटुम्बकी जरूरतें घटानी चाहिये। जीवन सादा करनेकी जरूरत दिन दिन सारी दुनियाँमें ज्यादा ज्यादा साफ होती जा रही है। अिस मतलबकी अेक अंग्रेज़ी कहावत है — 'सादा जीवन और अूँचे विचार'। हिन्दुस्तानमें तो सादगी अेक अच्छा गुण ही नहीं, बल्कि धर्मका अंग है।

कुटुम्बकी स्त्रियोंको भी घर खर्चमें अपना हिस्सा भरनेकी जरूरत है। मजूर वर्गकी औरतें घरका कामकाज करते हुअे भी कुछ न कुछ मजूरी करके कमाती हैं। दूसरी औरतें भी अैसा क्यों न करें? अेक घरमें कमानेवाला अेक और खानेवाले बहुत हों, तो अुस पर गैरवाजिब बोझा पड़े बिना नहीं रह सकता। अिसलिअे जिन ब्राह्मणोंको नौकरी मिलनेमें मुश्किल आती है, अुन्हें अिस सूचनापर भी विचार करना चाहिये।

'हरिजनबन्धु' ता० १७–९–'३३

१८

क्षत्रियका धर्म

काठियावाड़-राजपूत-परिषद होनेवाली है। अुसमें शरीक होनेकी मेरी बड़ी अिच्छा है। मगर यह तो असम्भव ही है।

काठियावाड़ बहादुरोंकी धरती थी। राजपूतोंकी वीरता दुनियाभरमें मशहूर है। लेकिन पुरानी बहादुरीकी तारीफसे आज राजपूत बहादुर नहीं हो सकते। ब्राह्मणोंने ब्रह्मज्ञान छोड़ा, राजपूतोंने रक्षाका धर्म छोड़कर बनियापन अपना लिया। बनिये गुलाम हो गये। फिर शूद्र सेवक न रहें, तो अिसमें अुन्हें कौन दोष दे सकता है? चारों वर्ण गिर गये, अिसलिअे अिन चारमेंसे पाँचवाँ धर्मविरुद्ध वर्ण पैदा हुआ और अुसे अछूत माना गया। पाँचवेंको पैदा करके अुसे दबाकर चार वर्ण खुद दबे और पतित हुअे।

अिस कठिन हालतमेंसे हिन्दुओंको कौन निकाले? हिन्दू न बचें तो मुसलमान भी नहीं बच सकते। चलती रेलगाड़ीके पास हम खड़े नहीं रह सकते, क्योंकि अुसकी तेज रफ्तार हमें खींच ले जाती है।

अिस तरह हिन्दुस्तानके आज़ाद होनेका अुपाय हिन्दुओंकी तरक्कीमें है। हिन्दुओंकी अुन्नति सिर्फ़ धार्मिक हो तभी हिन्दुस्तान बचेगा। हिन्दू पश्चिमके पशुबलकी नक़ल करने लगेंगे, तो खुद गिरेंगे और दूसरोंको गिरायेंगे।

अिस गिरी हुअी हिन्दू दुनियाको कौन अुठावे? डरे हुअेको निडर कौन बनाये? यह धर्म तो क्षत्रियका ही हो सकता है। अिसलिअे राजपूत परिषद अपना कर्तव्य समझना और पालना चाहे, तो अुसे अपने धर्मका विचार करना होगा।

बचावके लिअे तलवारकी ज़रूरत नहीं। तलवारका जमाना गया या जाने ही वाला है। तलवारका अनुभव जगतने खूब कर लिया है। जगत अब तलवारसे तंग आ गया है। अैसा लगता है कि पश्चिमको भी

थकान आ गयी है। मारकर बचाव करे वह क्षत्रिय नहीं, पर मरकर जो बचावे. वही क्षत्रिय है। भागे वह बहादुर नहीं, पर छाती खोलकर सामने खड़ा रहे, और घाव किये बिना घाव सहे, वह क्षत्रिय है।

पर घड़ीभर मान लीजिये कि तलवारकी आवश्यकता है। फिर भी क्या हुआ? रामने तलवार चलाअी हो, तो अुससे पहले वे चौदह वर्ष बनवास भुगतकर तपस्या करके शुद्ध हो लिये थे। पाण्डवोंने भी बनवास भोगा था। अर्जुनको ठेठ अिन्द्रके पास जाकर हथियार लाने पड़े थे। हथियारकी ताकतसे पहले तपका बल चाहिये। अगर अैसा न हो तो गृहयुद्ध हो और जैसे यादवोंका खुद अपने ही हथियारोंसे नाश हुआ, वैसा ही हमारे हथियार हमारा नाश करें।

अिसलिअे राजपूत परिषदका पहला फर्ज आत्माकी अुन्नति करना है। राजपूत अपने हकोंकी बात तो करेंगे ही, पर पहले अुन्हें अपने धर्मकी बात करनी चाहिये। वे व्यसन छोड़ें, सादगी ग्रहण करें, गरीबसे गरीब काठियावाड़ीको पहचानें, अुसके दुःखमें हिस्सा लें और अुसकी सेवा करें। यह सेवा करनेका हक कोअी छीन नहीं सकता। काठियावाड़के किसी भी आदमीको काठियावाड़ छोड़ना पड़े, तो यह राजपूतके लिअे शर्मकी बात है। जहाँ चरखा है, पींजन है और करघा है, वहाँ रोजी तो है ही। काठियावाड़की अमृत जैसी हवा छोड़कर बम्बअीकी ग़लीज़ हवा खानेको काठियावाड़ी किस लिअे जाय? अिसका जवाब दूसरे काठियावाड़ी दें अुसके पहले राजपूतोंको देना चाहिये? अिसका लांछन काठियावाड़के राजाओंपर ही है। काठियावाड़के राजा प्रजाकी भलाअीका ही खयाल करें, तो काठियावाड़की प्रजाको देशनिकाला किस लिअे लेना पड़े? राजपूत परिषदमें राजा तो होंगे नहीं; पर राजपूत धारें, तो राजा भी समझ जायँ। यह जमाना प्रजासत्ताका है। अिसलिअे जैसी प्रजा होगी, वैसे ही राजा भी होकर रहेंगे। प्रजाकी जाग्रतिमें राजपूत अच्छा हिस्सा ले सकते हैं।

दूसरोंके दोष निकालनेके बजाय परिषदके सदस्य अपने दोष निकालनेमें ज्यादा समय लगावेंगे, तो दूसरोंको आम रास्ता

दिखायेंगे। आजकल हम अपने दुःखोंके लिअे दूसरोंकी बुराअी करते हैं। हम भूल जाते हैं या भूल जाना चाहते हैं कि अपने दुःखोंके लिअे हम खुद ही ज़िम्मेदार हैं। ज़ुल्म सहनेवाला न हो, तो जालिम क्या करे? जब तक हम बसमें होनेकी कमज़ोरी रखेंगे, तब तक बसमें करनेवाले मिलते ही रहेंगे। बसमें करनेवालोंको गालियाँ देना आसान लेकिन बेकार है। अपनी कमजोरी ढूँढ़कर अुसे दूर करना मुश्किल तो है, पर यही फल देनेवाला है। और यह कमज़ोरी दूर करनेका अिलाज हमारे ही पास होनेके कारण कोअी अुसे छीन नहीं सकता।

राजपूत परिषदके मेम्बरोंसे मेरी अर्ज़ है कि वे अिस विचारको मुख्य समझकर अपने दिलोंको देखें।

अखीरमें अुन्हें अपने तजरबेका सार बता दूँ। भाषणों और भाषण देनेवालोंसे डरियेगा। अुनसे दूर रहना ही अच्छा है। मुँह बन्द करके काम करनेका ही तरीका रखा जायगा तो काम सुधरेगा। भूखेके दुःखको देखकर रोनेवाला भूखेकी भूख दूर नहीं कर सकता; लेकिन जन्मसे गूंगा कोअी साधु अुसके पास अेक मुट्ठी जवार ले जायगा, तो भूखेकी आँख चमक अुठेगी, अुसके चहेरे पर लाली लौट आयेगी और अुसके होठों पर हँसी दिखाअी देगी। अुसकी अँतडियाँ अुस गूंगेको दुआ देंगी। अीश्वर हमें भाषणोंसे सीख नहीं देता; वह सदा काममें लगा रहता है। हम सोते हैं, तब भी वह जागता रहता है। अुसे अपने काममेंसे बोलनेका वक्त ही नहीं बचता। राजपूतोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे काठियावाड़के दूसरे बकवासी राजनीतिक स्वयंसेवकोंको अपने आचरणसे शिक्षा दें।

ता० २५–५–’२४

१९

बेपारीका फर्ज़

[धुलियाके बेपारियोंकी भेंट की हुअी थैली और मानपत्रके जवाबमें दिया हुआ भाषण महादेवभाअीके महाराष्ट्रका पत्रमेंसे। मानपत्रमें गांधीजीको 'बनियेका बेटा' बताया गया था। अुसीका जिक्र करके गांधीजी शुरू करते हैं। — प्रकाशक]

"यह आपने मुझे याद दिलाकर ठीक किया कि मैं गरीब बनियेका बेटा हूँ। गरीब बनियेका बेटा बनकर ही मैं हिन्दुस्तानके गरीब लोगोंके लिअे अेक बड़ा बेपार चला रहा हूँ। और बेपारके सिवाय गोरक्षा भी मेरा धन्धा होना चाहिये; अिसलिये गोरक्षाका धन्धा भी कर लिया है। . . . आज शुद्ध बेपार पूरी तरह मिट गया है। और अुसी तरह विवेकपूर्ण गोरक्षाका भी नाश हो गया है। और मैं अपनेको समझदार बनिया मनवाता हूँ, अिसीलिअे ये दो धन्धे आपके सामने पेश करता हूँ। मुझमें बनिया बुद्धि है, क्षत्रियपन भी है और थोड़ासा ब्राह्मणपन भी है। पर ये सब बातें छोड़कर मैं अिस सालके लिअे अेक कंजूस बनिया बन जाना चाहता हूँ। और जिस तरह अेक लोभी बनिया कौड़ी कौड़ीका हिसाब करता है, अुसी तरह आपसे मैं कौड़ी कौड़ीका हिसाब करना चाहता हूँ। अिसलिअे, आपने ४१००) दिये हैं और शायद कल तक ५०००) पूरा कर देंगे, फिर भी मेरा मन मुझे कहता ही रहेगा कि धुलियाके लोगोंने ज्यादा क्यों नहीं दिया? यह बात नहीं कि मैं बनिया होनेके कारण और माँगता हूँ; पर मुझे लगता है कि हिन्दुस्तानको शूद्रने नहीं खोया, क्षत्रियने नहीं खोया, ब्राह्मणने नहीं खोया, बनियेने ही खोया है। और अगर कोअी वापस ले सकता है तो बनिया ही ले सकता है। अितिहासमें अैसी मिसालें मौजूद हैं, जिनमें बनिये घमण्डके साथ कहते हैं कि हमने सरकारकी मदद की, हमने जासूसी की और सरकारकी फलाँ सेवा की और अब सरकार हमारी मदद करे तो अच्छा। रमेशचंद्र दत्तने भी बताया है कि हिन्दुस्तान बेपारियोंके ज़रिये ही गया है।

"बेपार करनेमें कोअी शर्मकी बात नहीं। बेपार ठीक तरहसे हो, तो अुसमें कुछ भी बेअिज्जती नहीं। अंग्रेज़ तो बेपारी बनकर ही आये थे। वे बेपारके लिअे क्षत्रिय बने। वे बेपारपर कायम हुअे अपने राजके बचावके

लिअे ब्राह्मण भी बने। वर्णाश्रम धर्म नहीं बताता कि बनिया ब्राह्मण न बने, अपनी मा बहनको बचानेके लिअे क्षत्रिय न बने। वर्णाश्रम धर्मके हिसाबसे तो बनियेके धर्मकी विशेषता बनियापन है, 'कृषिगोरक्षवाणिज्य'* है। अपना बेपार बढ़ानेके लिअे अंग्रेज़ोंने बेपारी होते हुअे भी अपनी बुद्धि, ज्ञान और बहादुरीको अेक साथ काममें लिया, और हम अुनकी शक्तिसे चकित होकर वर्ण धर्म भूलकर पागल बने, नामर्द बने, देशद्रोही बने और बनियेका सहज धर्म भूल गये। अब बाजी वकीलोंसे, डाक्टरोंसे, ब्राह्मणोंसे या क्षत्रियोंसे नहीं सुधरेगी। पर बनिये अपना धर्म पालें, देशके लिअे खेती, गोरक्षा और बेपार करें, तो ही सुधरेगी। यह आपके मानपत्रका मेरा जवाब है।

"आपकी काली टोपियाँ, आपकी स्त्रियोंकी साड़ियाँ शर्मकी, गुलामीकी पोशाक है। लोगोंको ये टोपियाँ और साड़ियाँ देनेवाले बनिये हैं। आपको कच्चे मालको बचाना है। अिसके बजाय आपने अुसका सौदा किया। अिसलिअे आज आपकी बुद्धि जड़ हो गअी है। आप मिलें खड़ी करते हैं, पश्चिमकी राक्षसी सभ्यताकी नकल करते हैं और लोगोंका कस खींच लेनेवाला सामान पैदा करते हैं। अगर पश्चिमके लोग पूर्वके लोगोंको चूसना बन्द कर दें, तो अुनकी आधी मशीनें बन्द हो जायँ। आप भी अिसी रास्ते जा रहे हैं। अगर आप स्वराजके लायक बनना चाहते हों, तो जिसे मैं झूठा बेपार कहता हूँ अुसे छोड़िये और सच्चा बेपार अपनाअिये। आपका सीधा सादा धर्म यह है।

"भगवद्गीताका वैश्य करोड़पति बननेवाला नहीं, लेकिन देशको कुटुम्ब समझकर अुसकी भलाअीके लिअे अपने धर्मपर चलनेवाला है। थोड़ी बुद्धिको काममें लीजिये, थोड़ा विचार कीजिये और थोड़ा ब्रह्मचर्य पालिये, तो आपका फर्ज़ साफ़ समझमें आयेगा। आप अपना कर्त्तव्य समझने लगें, तो साठ करोड़का विदेशी कपड़ा आना बन्द हो जाय और ९ लाख चमड़े परदेश जानेसे रुक जायँ। लेकिन आज तो आपसे आदर्श गोशाला बनानेको कहता हूँ, आदर्श चर्मालय खोलनेको कहता हूँ, तो आप नाक भौं सिकोड़ते हैं।

* खेती, गोरक्षा और बेपार।

"यह नहीं कि मैं साठ बरसका हो गया हूँ, तो मेरी बुद्धि मारी गयी है। पर मेरे साथ तो सैकड़ों जवान काम कर रहे हैं। मुझे पता नहीं, कितने वर्ष जीना है। मैं तो गंगाके किनारे बैठा हूँ। मैं किस लिअे किसी चीज़को झूठी समझकर सच्ची मनवानेकी कोशिश करूँ? आप मुझे समझावें कि मेरा काम झूठा है, तो आपके पैरोंमें बैठूँगा — जैसे परशुराम रामचंद्रजीके चरणोंमें बैठे थे। मेरा दिल जीतनेवाला कोअी भी शख़्स मिल जाय, तो मैं अुसे साष्टांग नमस्कार करूँ। लेकिन आप मुझे बुद्धि और दिलसे न जीत सकें, तो मेरा खादी और गोरक्षाका काम अपना लीजिये। अिसके बिना अुद्धार नहीं।"

ता० २७-२-'२७

२८

शूद्रोंका हक़

[मैसूरमें वहाँके संस्कृत विद्यालयने गांधीजीको बुलाकर संस्कृतमें मानपत्र दिया, अुसके लिअे धन्यवाद देते हुअे किया हुआ भाषण, महादेवभाअीके साप्ताहिक पत्रमेंसे।
— प्रकाशक]

"आपने मुझे संस्कृतमें मानपत्र देकर मेरी बड़ी अिज्जत की है। अिसके लिअे शुक्रिया अदा करता हूँ। मैं मानता हूँ कि हरअेक हिन्दू लड़के और लड़कीका संस्कृत जानना धर्म है; और हरअेक हिन्दूको अितनी संस्कृत आनी चाहिये कि ज़रूरत पड़नेपर वह अपने विचार संस्कृतमें बता सके।"

अितना कहकर गांधीजीने पण्डितोंके लिअे दो शब्द कहे:

"मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि मैसूर राज्यमें शूद्रों और अछूतोंको संस्कृत सिखानेसे डरनेवाले या संस्कृत सिखाना पाप समझनेवाले पण्डित मौजूद हैं। मुझे मालूम नहीं कि अिसके लिअे शास्त्रमें कहाँ प्रमाण है कि शूद्रोंको संस्कृत सीखने यानी वेद पढ़नेका अधिकार नहीं। पर सनातनी हिन्दूकी हैसियतसे मेरी पक्की राय है कि अैसा कोअी प्रमाण हो भी, तो हमें अपने शास्त्रोंका अक्षरार्थ करके अुसके मर्मको नहीं मारना

चाहिये । जैसे अिन्सानके विकासका सिलसिला जारी रहता है, वैसे ही शब्दोंका विकास भी होता ही रहता है, और अगर किसी भी वेदकी बातका दिल और दिमाग़को न जँचनेवाला अर्थ किया जाता हो, तो वह छोड़ देने लायक है ।

" अब मेरी समझसे हिन्दू धर्ममें अछूतपनके लिअे कहीं भी जगह नहीं । और हिन्दुस्तानके बहुतसे हिस्सोंमें मैंने अैसे बहुतसे अछूत देखे हैं, जो छूत भाअियोंसे बुद्धि या नीतिमें जरा भी हलके नहीं हैं । आज जिन ब्राह्मण लड़के लड़कियोंने संस्कृतके श्लोक सुनाये, अुतना ही शुद्ध अुच्चारण करनेवाले आदिकर्णाटक लड़के तो मैंने मैसूरमें बहुत देखे हैं । अिसलिअे मैं जोरके साथ माननेवाला हूँ कि अछूतपनके लिअे हिन्दूधर्ममें किसी भी कारणसे जगह नहीं हो सकती । फिर भी, आपने मुझे विद्यालयमें बुलाकर मान दिया और मेरे विचारोंके साथ हमदर्दी दिखाअी, अुसके लिअे मैं आपका आभारी हूँ ।

" यहाँ कअी ब्राह्मण तकली चला रहे हैं; यह देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है । लेकिन मैं यह चाहता हूँ कि अिस तकलीके सूतसे जनेअू बनाकर ही आप लोग सन्तोष न मान लें । जनेअू तो अिसी सूतसे बनाअिये; पर अपने कपड़े भी अिसी सूतके बनवाकर पहनेंगे, तभी आपके धर्मकी शोभा होगी । अिस विद्यालयमें आकर विदेशी कपड़े पहने हुअे लड़के लड़कियोंको संस्कृत श्लोक बोलते देखकर मुझे तो बड़ा रंज हुआ । मुझे यह बहुत बुरा लगा । बाहरके बर्तावमें धर्मका रहस्य नहीं है, पर बाहरसे बहुत बार भीतरकी चीज जाहिर हो जाती है । अिसलिअे जब जब मैं संस्कृतकी पाठशालाओंमें जाता हूँ या जिन संस्थाओंमें आर्योंकी विद्या पढ़ाअी जाती है वहाँ जाता हूँ, तभी मैं हमारे पुराने ऋषियोंके सादा और पवित्र वातावरणके दर्शन करनेकी आशा रखता हूँ । मुझे अफसोस है कि यहाँ मैं वह दर्शन नहीं कर सका । और मैं शिक्षकों और बच्चोंके माबापोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे यहाँ पढ़नेवाले बच्चोंको आर्योंकी संस्कृतिके लायक़ खादी पहनावें ।"

ता० २१-८-'२७

२१

हज्जाम या 'वाळंद'?

अेक भाअी पालीताणासे लिखते हैं:

"आप 'वाळंद' शब्दके बदले 'हज्जाम' शब्द काममें लेते हैं। काका कालेलकरने मान्यवर श्री धर्मानन्द कोसंबीकी 'आपबीती' नामकी मराठी पुस्तकके तर्जुमेमें 'वाळंद' शब्द अिस्तेमाल किया है, और दूसरी जगह भी वही शब्द काममें लेते हैं। अिसी तरह गुजराती भाषामें आम तौरपर 'वाळंद' शब्द ही काममें लिया जाता है।

"'हज्जाम' शब्द अिस्तेमाल करनेसे समाज नाअीको हल्की नजरसे देखता है; और बहुत बार कितने ही भाअियोंकी तरफसे अुन्हें अिसके लिअे अपमान भी सहना पड़ता है। और फिर दूसरे लेखक भी बहुत कुछ आपकी नक़ल करते हैं। अिसलिअे आगेके लिअे तो सुधार बहुत ही जरूरी है। हो सके तो कृपा करके **नवजीवन**के जरिये सुधार जाहिर कीजिये, ताकि गरीब कौमका भला हो।"

हज्जाम शब्दके अिस्तेमालमें जो हल्कापन है, वह असलमें धन्धेके लिअे है। हज्जाम शब्द अुनके लिअे है, जिनका धन्धा बाल काटनेका है। वह अच्छा न लगे तो मैं **नवजीवन**में 'वाळंद' शब्द ही काममें लूँगा। लेकिन मेरी पक्की राय है कि अिससे असली रोग दूर नहीं होगा। सच्चा अुपाय तो यह है कि जो जो जरूरी मगर मैला साफ करनेवाले धन्धे हैं, अुन धन्धोंके लिअे नफ़रत दूर की जाय; फिर नाम कुछ भी रखा जाय, अिस बारेमें हम अुदासीन रह सकते हैं। 'नाम धरावे हेते हरि बालपनेमें जाय मरी' — अिसका हम क्या करें? अिससे हम 'हरि' शब्दका तिरस्कार नहीं करेंगे। शब्दोंकी प्रतिष्ठा मनुष्यकी प्रतिष्ठाकी तरह बढ़ती घटती रहती है और रहेगी।

अिस सुधरे हुअे ज़मानेमें तो सब अपनी अपनी हजामत करना सीख रहे हैं, अिसलिअे 'वाळंद'के धन्धेमें जो हलकापन है, वह अपने आप

निकल जायगा। कुछ कुछ निकल भी गया है। मेरे दिलमें 'वाळंद', भंगी, चमार, ढेढ़ वग़ैरा शब्दके लिअे कुछ भी नफरत नहीं रही। मैं तो यह सब धन्धे करता हूँ, दूसरोंको करनेकी प्रेरणा देता हूँ और अैसा करनेमें मुझे आनंद होता है। अुक्त धन्धे करनेवाले भाअियोंको मेरी सलाह है कि वे यह भूल जायँ कि अिस धन्धेके लिअे समाजमें नफ़रत है। और वे अिन धन्धोंमें होशियार होकर, अपना आचार-विचार शुद्ध करके अुन धन्धोंकी और अपनी अिज्जत बढ़ावें। अिसी गरजसे, हालांकि मुझे अपनी हजामत अच्छी तरह बनाना आता है तो भी जहाँ कहीं खादी पहननेवाला नाअी मिल सकता है, वहाँ अुसे तकलीफ़ देता हूँ और अुसे देशसेवामें लानेकी कोशिश करता हूँ। हमें शुद्ध स्वराज्य लेना है, अिसीलिअे अैसे धन्धे करनेवाले सभी लोगोंकी मददकी और सुधारकी जरूरत है। हमारे यहाँ चमार, जुलाहे, मोची और ढेढ़ वग़ैरा ज्ञानी भक्त हो चुके हैं। तो फिर अुनमेंसे कोअी अपनी सेवाके बलपर राष्ट्रपति हो जाय तो क्या बड़ी बात है? अैसा धन्धा करनेवाला अपना आचरण बिलकुल शुद्ध रख सकता है और अिस तरह अपनी बुद्धि तेज कर सकता है। दुःख यह है कि अैसा धन्धा करनेवाले बुद्धिशाली निकलते हैं, तो अुन्हें अपने धन्धेसे शर्म आती है और अखीरमें वे अुसे छोड़ देते हैं। मेरे खयालका राष्ट्रपति 'वाळंद' या मोचीके धन्धेसे गुजर करते हुअे भी राष्ट्रकी बागडोर सम्हालता रहेगा। यह हो सकता है कि राष्ट्रके कामके बोझके कारण वह अपने धन्धेको पूरी तरह न कर सके। लेकिन यह तो अलग सवाल है।

ता० २२-१२-'२९

२२

निजी मेहनत

१

(सत्याग्रह आश्रमकी नियमावलीमेंसे)

"अस्तेय और अपरिग्रहके पालनके लिअे खुद मेहनत करनेका नियम जरूरी है। अिसके सिवा, सभी आदमी अपना गुजर शरीरकी मेहनतसे करें, तभी समाजकी और अपनी दुश्मनी करनेसे बच सकते हैं। जिस औरत या मर्दके हाथ पैर चलते हैं और जिसमें समझ आ गयी है, अुसे अपना रोजका खुदके निपटाने लायक सब काम कर लेना चाहिये और दूसरेकी सेवा बिना कारण नहीं लेनी चाहिये। लेकिन बच्चोंकी, दूसरे अपंग लोगोंकी और बूढ़े स्त्री-पुरुषोंकी सेवाका मौका आ जाय, तो अुसे करना सामाजिक जिम्मेदारी समझनेवाले हर अिन्सानका फर्ज है।

"अिस आदर्शको सामने रखकर आश्रममें मजूर तभी रखे जाते हैं, जब अुनके बिना काम नहीं चलता। और अुनके साथ मालिकनौकर-सा बर्ताव नहीं किया जाता।"

२

(अूपर लिखे 'व्रत'को समझानेवाला 'मंगल प्रभात'का प्रकरण)

अंग मेहनत मनुष्य मात्रके लिअे लाजिमी है, यह बात पहले पहल पूरी तरह मेरे मनमें टॉल्स्टॉयके अेक निबन्धसे बैठी। अितनी साफ़ तौरपर जाननेसे पहले ही मैं अिस बातपर अमल तो करने लग गया था — रस्किनके 'अण्टु धिस लास्ट' या 'सर्वोदय'को पढ़नेके बाद तुरन्त ही। खुद मेहनत अंग्रेज़ीके 'ब्रेड लेबर'शब्दका अनुवाद है। 'ब्रेड लेबर'का शब्दशः तर्जुमा रोटी (के लिअे) मजूरी है। यह अीश्वरी नियम है कि रोटीके लिअे हरअेक अिन्सानको मजूरी करनी चाहिये और हाथ पैर हिलाना चाहिये। अिसकी खोज टॉल्स्टॉयने पहले पहल नहीं की, बल्कि

अुनसे बहुत कम जाने हुअे रूसी लेखक बुर्नोहिने की थी। अुसे टॉल्स्टॉयने मशहूर किया और अपनाया।

अिसकी झाँकी मुझे भगवद्गीताके तीसरे अध्यायमें मिलती है। यज्ञ न करनेवालेके लिअे अितना कड़ा शाप है कि जो यज्ञ किये बिना खाता है, वह चोरीका अनाज खाता है। यहाँ यज्ञका अर्थ खुद मेहनत या रोटीमजूरी ही अच्छा लगता है। और मेरी रायसे यह अर्थ हो भी सकता है। कुछ भी हो, हमारा व्रत अिस तरहसे पैदा हुआ है। बुद्धि भी हमें अिसी चीजकी तरफ़ ले जाती है। जो मजूरी न करे, अुसे खानेका क्या हक? बाअिबिल कहती है: 'तू अपनी रोटी पसीना बहाकर कमाना और खाना।'

करोड़पति भी अगर अपनी खाटपर पड़ा रहे और अुसके मुँहमें कोअी डाले तभी खाय, तो वह बहुत समय तक नहीं खा सकता; अुसमें अुसे रस भी नहीं रहेगा। अिसलिअे वह कसरत वगैरा करके भूख लगाता है और खाता है, तो अपना ही हाथ-मुँह हिलाकर। अगर अिस प्रकार कुछ न कुछ कसरत राजा और रंक सबको करनी ही पड़ती है, तो फिर यह सवाल अपने आप खड़ा होता है कि रोटी पैदा करनेके लिअे ही सब कसरत क्यों न करें? किसानको हवा खाने या कसरत करनेके लिअे कोअी नहीं कहता। और दुनियाके नव्वे फी सदीसे भी ज्यादा आदमियोंका गुजर खेतीसे होता है। अिनकी नकल बाकीके दस फी सदी लोग करें, तो जगत्‌में कितना सुख, कितनी शान्ति और कितनी तन्दुरुस्ती फैले? और खेतीके साथ बुद्धि मिल जाय, तो अुसके साथ लगी हुअी बहुतसी अड़चनें कम हो जायँ।

दूसरे, खुद मेहनतके अिस निरपवाद क़ानूनको सब मानें, तो अूँचनीचका भेद मिट जाय। आज तो जहाँ अूँचनीचकी गन्ध भी नहीं थी वहाँ, यानी वर्णव्यवस्थामें, भी वह पैठ गयी है। नौकर मालिकका फर्क सब जगह फैल गया है, और गरीब अमीरको फूटी आँखसे भी देख नहीं सकता। अगर सब रोटीके लायक़ मजूरी करें, तो अूँचनीचका भेद जाता रहे; और फिर भी धनिक वर्ग रहेगा, तो

वह अपनेको धनका मालिक नहीं बल्कि अुसका सिर्फ रखवाला या ट्रस्टी समझेगा और अुसको खासकर लोगोंकी सेवामें ही लगायेगा। जिसे अहिंसाका पालन करना है, सचाअीकी पूजा करनी है, ब्रह्मचर्यको स्वाभाविक बनाना है, अुसके लिअे तो खुद मेहनत रामबाण हो जाती है।

असलमें तो अैसी मेहनत खेती ही है। लेकिन अभी तो यह हालत है ही कि सब अिसे नहीं कर सकते। अिसलिअे खेतीका आदर्श ध्यानमें रखकर अिन्सान खेतीके अेवजमें भले ही दूसरी मजूरी करे — जैसे कताअी, बुनाअी, सुतारी, लुहारी वगैरा वगैरा।

सबको अपना भंगी तो खुद ही बन जाना चाहिये। जो खाता है, वह मैला तो करता ही है। अिसलिअे यही सबसे अच्छा है कि जो मैला करे, वही अुसे गाड़े। यह न बन पड़े तो सारा कुटुम्ब अपना कर्त्तव्य करे। मुझे बरसोंसे लगता है कि जहाँ भंगीका जुदा काम सोचा गया है, वहाँ कोअी बड़ा दोष घुस गया है। हमारे पास अिसका अितिहास नहीं कि अिस जरूरी और सेहतको बचानेवाले कामको हल्केसे हल्का पहले पहले किसने माना होगा। जिसने माना अुसने हमारी भलाअी तो हरगिज़ नहीं की। यह भावना हमारे दिलमें बचपनसे ही ठँसनी चाहिये कि हम सब भंगी हैं; और अिसे ठँसानेका सहजसे सहज अुपाय यह है कि जो समझ गये हैं, वे खुद मेहनतकी शुरूआत पाखाना सफ़ाअीसे करें। जो अिस तरह समझकर करेगा, वह अुसी वक्तसे धर्मको अलग अर्थमें और सच्ची तरहसे समझने लगेगा।

बच्चे, बूढ़े और रोगसे अपंग हुअे लोग मजूरी न करें, तो अिसे कोअी रियायत न समझे। बच्चे माँमें शामिल हैं। अगर कुदरतका कानून न टूटे, तो लोग बूढ़े और अपंग न हों और बीमारी तो हो ही किस लिअे?

ता० ६–९–'३०

२३

भिखारी साधु

शायद अैसा माना जायगा कि भिखारी शब्दका प्रयोग साधुका विरोधी है। मगर आजकलके साधुका मतलब है गेरुअे कपड़े पहननेवाला; फिर अुसका दिल गेरुआ हो, साफ हो या मैला हो। साधु शब्दका सच्चा अर्थ दिलका साधु या पवित्र ही है। पर अैसे साधु तो मुश्किलसे ही पहचाने जाते हैं। हाँ, भगवे कपड़ेवाले असाधु साधु भीख माँगते जरूर नज़र आते हैं। अिसलिअे अैसे भिखमंगोंके लिअे भिखारी साधुका अिस्तेमाल किया गया है। अैसोंके लिअे ही अेक भाअी लिखते हैं :

> "आप चरखेके जरिये कअी काम कर लेना चाहते हैं। सब धर्मवालोंकी अेकता करने और अूँचे नीचे माने जानेवाले वर्णोंका भेदभाव मिटानेका काम भी चरखेके जरिये साधना चाहते हैं। यह सब बहुत अच्छा है। पर आजकल शक्ति होते हुअे भी आलसी हो जानेके कारण भीख माँगनेवालोंकी तादाद हिन्दुस्तानमें बढ़ गअी है। अिन्हें आप चरखा क्यों नहीं बताते? अैसी अेक संस्था क्यों नहीं बनाते, जिसमें कोअी भी भिखारी कुछ न कुछ मेहनत करके ही खा सके? अैसी संस्था हो तो जिनमें दान देनेकी शक्ति है, वे दान देनेके बजाय अिस तरहके आश्रमों पर चिट्ठी दें और अैसे लोगोंको काम और खुराक वहीं मिले।"

यह सूचना तो बढ़िया है, पर अिसपर अमल कौन करेगा? गरीब लोगोंमें चरखा फैलानेमें जितनी मुश्किलें आती हैं, अुससे कहीं ज्यादा मुश्किल भिखारी साधुओंमें चरखा फैलानेमें है। अिसमें धर्मकी भावना बदलनेकी बात आ जाती है। आज धनवान लोग अैसा मानते हैं कि झोलीवालेकी झोलीमें थोड़ेसे पैसे डाले कि परोपकार हो गया, पुण्य हो गया! अिन्हें कौन समझावे कि अैसा करनेमें भलाअीके बजाय बुराअी होती है, धर्मके नामपर पाप होता है और पाखण्ड पनपता है? छप्पन लाख साधु कहलानेवाले लोगोंमें सेवाभाव आ जाय और वे मेहनत करके ही रोटी खायँ, तो हिन्दुस्तानको स्वयंसेवकोंकी जबरदस्त फ़ौज मिल जाय। गेरुआ पहननेवालोंको यह बात समझाना करीब करीब नामुमकिन है।

अुनमें तीन तरहके लोग हैं। बहुत बड़ा भाग पाखण्डी है, जो सिर्फ आलसी रहकर ही मालपुअे खाना चाहता है। दूसरा वर्ग जड़ है। वह अैसा कुछ मानता है कि भगवा कपड़ा और मेहनत दोनोंमें मेल बैठ नहीं सकता। तीसरा भाग बहुत छोटा है, जो सचमुच त्यागियोंका है, लेकिन जिन्हें लम्बे अर्सेकी आदतके कारण अैसा लगता है कि संन्यासी दूसरोंकी भलाअीके लिअे भी मेहनत नहीं कर सकते। अगर यह आखिरी छोटा हिस्सा मेहनतकी कीमत समझ ले और अितना भी समझ जाय कि पिछले युगोंमें जो कुछ भी हुआ हो, अिस जमानेमें तो संन्यासियोंको अुदाहरणके तौर पर ही सही, मेहनत करना जरूरी है, तो दूसरे दोनों वर्गोंको भी समझाया जा सकता है। मगर अिस वर्गको समझाना बहुत ही कठिन काम है। यह काम धीरजसे और तभी होगा जब अिस वर्गको तजुर्बा होगा। अिसका मतलब यह हुआ कि जब चरखेका हिन्दुस्तानमें बोलबाला हो जायगा, तब यह वर्ग अुसकी शरणमें आयेगा। चरखेका बोलबाला यानी हृदय-साम्राज्य और हृदय-साम्राज्य यानी धर्मकी बढ़ती। धर्मकी बढ़ती होनेपर संन्यासियोंका यह छोटासा वर्ग अुसे पहचाने बिना नहीं रह सकता।

जितनी मुश्किल संन्यासी वर्गको समझानेमें है, लगभग अुतनी ही धनिक वर्गको समझानेमें है। धनी लोग अपना धर्म समझ जायँ, आलस्यको अुत्तेजन न दें और भिखारीको खाना न देकर काम ही दें, तो चरखेका बोलबाला आज ही हो जाय। लेकिन अमीरोंसे अैसी अुम्मीद कैसे रखी जा सकती है? धनी लोग खुद ज्यादातर और आम तौरपर आलसी होते हैं; और आलसको अुत्तेजन तो देते ही हैं। अुनसे जाने अनजाने भी आलसी भिखमंगोंको बढ़ावा मिल जाता है। अिस तरह लेखकने सुझाव तो अच्छा ही रखा है, लेकिन यह नहीं सोचा कि अुसपर अमल करना कितना कठिन है। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि काम कठिन है, अिसलिअे हम कोशिश ही न करें। कोशिश तो हमें करते ही रहना चाहिये। अेक भी धनवान समझकर आलसीको दान देना छोड़ दे और अेक भी भिखारी साधु, जो अपंग नहीं है, मेहनत किये बिना न खानेकी प्रतिज्ञा कर ले, तो अुतना ही हिन्दुस्तानका फायदा है। अिसलिअे

जहाँ जहाँ अैसी कोशिश हो सके, वहाँ वहाँ करनी ही चाहिये । मुश्किलोंको ध्यानमें रखनेसे अितना ही होगा कि फौरन फल न मिलने पर निराशा न होगी और हम यह न मान बैठेंगे कि कोशिश करना ही बेकार है ।

ता० १–८–'२६

२४

'साधुओं'की तकलीफ

पूछनेवालेका अेक सवाल यह है :

"साधुओंका जुल्म आप जानते हैं ? हैदराबादमें अेक साधुने जुल्मसे रुपया अैंठनेकी कोशिश की । गुजरातके गाँवोंमें भी अैसे साधु गाँव गाँव जाकर बड़ा दुःख देते हैं और गरीब लोगोंसे जबरदस्ती करके सौपचास रुपयेकी रक़म अपने खाने — मिठाअीके लिअे निकलवा लेते हैं । यह तो अच्छा हुआ कि हैदराबादमें पुलिस थी । गाँवोंमें पुलिस कहाँसे लावें ? अिस बारेमें गाँवोंके लोगोंको जरूर लिखिये कि वे अैसे साधुओंसे डरें नहीं, और अुन्हें रुपया देने या खिलानेमें कुछ भी पुण्य नहीं है ।"

अिस तरह लोगोंको सतानेवाले साधु कहलानेके हक़दार नहीं । भेससे भुलावेमें आनेवाला यह देश गेरुआ कपड़े पहननेवाले या सिर्फ़ लंगोटीसे काम चला लेनेवाले लोगोंके चक्करमें आकर अुन्हें साधु समझकर पूजता है । भेससे कोअी साधु नहीं हो जाता । साधुके भेसमें हजारों असाधु अिस देशमें भटकते फिरते हैं । साधुके रूपमें दीखनेवालों या सचमुच असाधु जाहिर हो जानेवालोंसे गाँवोंके लोगोंको डर जानेका कुछ भी कारण नहीं । गाँवोंके लोगोंमें साधुको पहचाननेकी शक्ति आनी चाहिये और दुष्ट लोगोंका डर छोड़ना चाहिये । वहम और डर अिन दोनों दुश्मनोंको गाँवसे निकाल बाहर करनेके लिअे पढ़ेलिखे वर्गको गाँवोंमें घुसनेकी जरूरत है । सरदार वल्लभभाअीने सारे हिन्दुस्तानको गाँवोंमें घुसनेका आम रास्ता बताया है । अूपरके जैसे बहुतेरे काम अिस समयके रचनात्मक कामोंके सिलसिलेमें बारडोलीमें होंगे और जनता नये पदार्थपाठ सीखेगी ।

ता० २–९–'२८

२५

दीक्षा कौन ले ?

जावरा रियासतमें गुलाबबाअी नामकी अेक ओसवाल सुहागिन है। अुसने हिन्दीमें अेक परचा छपवाकर बँटवाया है। अुसपरसे मालूम पड़ता है कि अुसके पतिने, जो छोटी अुम्रका है, दीक्षा लेनेके अिरादेसे घर छोड़ा है और अपनी सोलह बरसकी स्त्रीपर अिस तरहका खत लिखा है: "करीब दो सालसे मेरा दीक्षा लेनेका विचार है। मैं कुटुम्बकी आज्ञा बराबर माँग रहा हूँ। यहाँ आनेके बाद भी पाँच-छह पत्र लिखे हैं, मगर अिजाजत नहीं मिली। अब मैंने खुद ही दीक्षा लेनेका विचार किया है।" अिस पतिकी साठ वर्षकी बूढ़ी माँ है। जिन सज्जनने अिस बारेमें मेरे पास पत्रिका भेजी थी, अुनसे मैंने और हालात पूछे, तो नीचे मुताबिक मिले हैं। पत्र हिन्दीमें है: "गुलाब मामूली पढ़ी लिखी है, हिन्दी लिखना पढ़ना जानती है। अुसने अपने भाव बताये। अुनके अनुसार अुसके मित्रने पत्रिका लिख दी और अुसने छपा दी। वह अपने भाअीके साथ जाकर खुद ही छपा लायी। पति साधारण हिन्दी लिखनापढ़ना जानता है। कुटुम्बकी हालत नाजुक है। अभी तक अुसे किसीने दीक्षा नहीं दी।"

मुझे अुम्मीद है कि अिस नौजवानको कोअी दीक्षा नहीं देगा। अितना ही नहीं, वह खुद अपना धर्म समझ जायगा। यह तो शोभाकी बात हो सकती है कि छोटी अुम्रमें बुद्ध या शंकराचार्य जैसे ज्ञानी दीक्षा ले लें। पर हरअेक जवान अैसे महापुरुषोंकी नकल करने लग जाय, तो यह धर्मके लिअे और अपने लिअे शोभाके बजाय शर्मकी बात होगी। आजकल ली जानेवाली दीक्षामें कायरताके सिवा और कोअी बात देखनेमें नहीं आती और अिसीसे साधु भी तेजस्वी होनेके बजाय ज्यादातर हम-जैसे ही दीन और अज्ञानी होते हैं। दीक्षा लेना बहादुरीका काम है और अुसके पीछे पिछले जन्मके बड़े संस्कार या अिस जिन्दगीमें

मिला हुआ अनुभव ज्ञान होना चाहिये। बूढ़ी माँ और जवान स्त्रीका कुछ भी विचार किये बिना दीक्षा लेनेवालेमें अितना अधिक वैराग्य होना चाहिये कि आसपासका समाज अुसे समझे बिना न रहे। अैसी कोअी भी ताकत अिस दीक्षा लेनेवाले जवानमें नहीं दीखती।

लेकिन दीक्षा लेनेके लिअे अुत्सुक नौजवान दीक्षाका अधिक विस्तृत अर्थ क्यों नहीं करते? अभी तो संसारधर्म पालनेवाले भी बहुत थोड़े देखे जाते हैं। घर बैठे दीक्षा-जैसी जिन्दगी बितानेमें कुछ कम पराक्रम नहीं चाहिये, और सच्ची कसौटी तो अुसीमें होती है। बहुतसे दीक्षा लिये हुओंको मैं जानता हूँ, और वे बेचारे सीधेपनसे मंजूर करते हैं कि न अुन्होंने प्रमादको जीता और न पाँच अिन्द्रियोंको। दीक्षा लेकर तो अुन्होंने सिर्फ अपने खाने पहननेकी सहूलियत बढ़ा ली है। सन्तोषके साथ, पाक रहकर, सचाअीको रखते हुअे, गरीबीसे घरका काम चलाना, पराअी स्त्रीको माँ-बहन समझना, अपनी स्त्रीके साथ भी हद बाँधकर भोग भोगना, शास्त्रों वगैराका अध्ययन करना और भरसक देशकी सेवा करना कोअी छोटीमोटी दीक्षा नहीं है। दीक्षाका अर्थ है आत्म समर्पण। आत्म समर्पण बाहरी ढोंगसे नहीं होता। यह मनकी चीज़ है और अुसके सिलसिलेमें कुछ बाहरी आचार भी जरूरी हो जाता है, लेकिन वह शोभा तभी पाता है, जब वह भीतरी सफाअी और भीतरी त्यागकी सच्ची निशानी हो। अुसके बिना वह सिर्फ़ बेजान चीज़ है।

ता० २८–८–'२७

वर्ण-व्यवस्था

दूसरा हिस्सा

जाति और कुरीतियाँ

१

जाति 'बंधन'

जातिको मैंने संयमके बढ़ानेमें मदद देनेवाली मंजूर किया है। पर आजकल जाति संयमके रूपमें नहीं, बल्कि बंधनके रूपमें पायी जाती है। संयम अिन्सानको शोभा देता है और स्वतंत्र करता है; बंधन बेड़ी बनकर फिक्रमें डालता है। आजकल जातिका जो अर्थ किया जाता है, वह कोअी चाहने लायक या शास्त्रीय नहीं। आज जिस मानीमें वह अिस्तेमाल होता है, अुस मानीमें जाति जैसा शब्द ही शास्त्र नहीं जानता। वर्ण हैं और चार ही हैं। लेकिन जातियाँ बेशुमार हैं और अुनमें भी दल बन गये हैं, जिनमें बेटीव्यवहार बन्द होता जा रहा है। यह तरक्कीकी नहीं, बल्कि अवनतिकी निशानी है।

अैसे विचार नीचेके पत्रसे पैदा हुअे हैं :

"आप जैसे लोग तो सब जातियोंको अेक होनेका अुपदेश देते हैं; अिधर मेरी जातिमें, जो लाड जातिके नामसे पहचानी जाती है, अध्यक्ष-जैसे मामूली ओहदेके बारेमें जातिभाअियोंका मतभेद हो गया है, और वह यहाँ तक कि वे जातिकी सभामें हाथा-पाअी करनेसे भी बाज नहीं आते। आप-जैसोंको अिस मामलेमें तकलीफ देनेकी बिल्कुल अिच्छा नहीं। फिर भी अेक जातिमें कुटुम्बका झगड़ा और आपसकी मारपीट बन्द होना अच्छा है। अिसलिअे मेरी नम्र प्रार्थना है कि आप अपनी राय अिस बारेमें "नवजीवन"के ज़रिये लाड जातिके सब भाअियोंको बतानेकी कृपा करें।

"हमारी जातिमें खंभाती, आम्री, दमणी, पेटलादी, सूरती और दूसरे लाड भाअी शामिल हैं। अिनमेंसे पहले चारमें बेटीव्यवहार होता है। पिछले बीस-तीस वर्षसे अध्यक्षका चुनाव पहली चार जातियोंमेंसे होता आया है। अिस सालकी जातिसभामें अिन चारकी तरफ़से अेक अैसा प्रस्ताव आया था कि अध्यक्ष व मंत्री होनेका हक अुन्हीं लोगोंको है, जो बेटीव्यवहारको और बम्बअीकी लाड जातिकी सत्ताको सबके अूपर मानते हों। अिस प्रस्तावसे सूरती लाडभाअियोंकी भावनाओंको सख्त चोट लगी; और लगभग ढाओसौसे तीनसौ आदमियोंके दस्तखतोंसे अेक प्रार्थनापत्र कमेटीको भेजा गया था। लेकिन कमेटी अभी तक किसी तरहका फैसला नहीं कर सकी। अिस समयका वातावरण अितना ज्यादा खराब है कि शायद जातिमें दल बन जायँ और सम्भव है अदालतमें भी मामला चला जाय।"

यह खबर सही हो तो दुःखकी बात है। अिसमें अध्यक्ष और मंत्रीके ओहदेके लिअे लड़ाअी कैसी? सूरती, आम्री, दमणी वग़ैरा भेद कैसे? लाड युवक मंडलकी सभामें जब मैं गया था, तो मुझपर अच्छा असर पड़ा था। अध्यक्षका पद सेवाके लिअे होता है, मानके लिअे हरगिज़ नहीं। मंत्री तो समाजका नौकर है। अिस जगहके लिअे होड़ हो, तो भी मीठी ही होनी चाहिये। मुझे अुम्मीद है कि अूपरका झगड़ा दोनों पक्ष मिलजुलकर मिटा लेंगे। बनिये सभी मिलकर अेक जाति क्यों न बन जायँ? अैसा धर्म कहीं भी नहीं है कि वैश्य जातिमें लड़की दी-ली नहीं जा सकती। मैं अगर अुपजातियोंको किसी हद तक मानता हूँ, तो वह सिर्फ़ समाजके सुभीतेके लिअे। जब अूपर जैसे किस्सोंका अनुभव होता है, तब अैसा ही लगता है कि अिरादेपूर्वक अिन बन्धनोंको काटकर अुनसे छूटना और छुड़ाना चाहिये।

ता० ३–५–'२५

२

धर्मके नामपर लूट

लाड जातिमें जो आपसी झगड़ा चल रहा है, अुसके बारेमें मेरे पास अेक लम्बा पत्र आया है। लिखनेवालेने शुद्ध प्रयत्न करके बहुतसी जानकारी दी है और बताया है कि समझौतेके लिअे जो अुपाय हो सकते हैं वे किये गये हैं। मैं यह माननेको तैयार हूँ। मगर मेरा विचार लाड जातिके बारेमें कुछ भी लिखने या सुझानेका नहीं। हाँ, अुसपरसे आनेवाले विचार हिन्दू समाजके सामने रखनेका अिरादा है।

अेक तरफ़ हिन्दू धर्मको बचानेके लिअे अच्छे संगठन हो रहे हैं; दूसरी तरफ़ हिन्दू धर्ममें जो कमज़ोरियाँ घुस गअी हैं, वे अुसे अन्दरसे कुतर रही हैं। यानी, जैसे अेक मोटे लकड़ेके गर्भको भीतरसे कीड़ा कुतर कर खा रहा हो, तो अुसे अूपरसे ढँकने या रोगन लगाने पर भी आखिर वह लकड़ा खाया ही जायगा, वैसे ही हिन्दू जातिके गर्भमें जो

कीड़ा पैठ गया है और अुसे खाये जा रहा है, अुसका नाश न किया जायगा तो बाहरसे हिन्दू धर्मका कितना ही बचाव क्यों न किया जाय, फिर भी अुसका नाश होगा ही ।

वर्णके बन्धनके नामपर वर्णका संकर हो गया है। वर्णकी मर्यादा चली गयी है, अुसकी ज़्यादती रह गयी है। वर्णकी पाबन्दी धर्मके बचावके लिअे थी, वह अब अुलटी होकर धर्मको कुतर रही है। वर्ण चार होनेके बजाय बेशुमार हो गये हैं। वर्ण मिटकर जातिके बाड़े बन गये हैं। और अुस गिरोहके भीतर, घूमनेवाले ढोर जैसे डिब्बेसे भर दिये गये हों, अुसी तरह हम बेमालिकके बनकर गिरोहमें घिरे क़ैदी बन गये हैं। वर्ण जनताके पालनेवाले थे; जातियाँ जनताका नाश करनेवाली हो गयी हैं। हिन्दू जनताकी या हिन्दुस्तानकी सेवा करनेके बजाय हम अपने बाड़ोंकी यानी अपनी बेड़ियोंकी रक्षा करनेमें ही फँसे रहते हैं; और अुसके सिलसिलेमें अुठनेवाले सवालोंका फ़ैसला करनेमें हमारा वक़्त, हमारी बुद्धि और हमारा रुपया खर्च होता है। पारधी छत्ता तोड़नेको सामने खड़ा है और बेवकूफ़ शहदकी मक्खियाँ अेक दूसरेके घरपर कब्ज़ा करनेके लिअे पंचायतें कर रही हैं! जहाँ बीसा दस्साका फ़र्क़ ही मिटा देना है, वहाँ यह सवाल ही कहाँ रहता है कि बीसे बड़े या दस्से? जहाँ हिन्दुस्तानकी सारी बनिया कौमको अेक करनेकी आवश्यकता है, वहाँ दस्से-बीसे, मोढ़-लाड, हालारी-घोघारीके भेदों और अुनके आपसी झगड़ोंकी गुंजायश ही कहाँ है?

वर्ण धन्धेकी वजहसे थे और जातिका दारोमदार सिर्फ़ रोटीबेटी व्यवहार पर है। जहाँ तक मैं रोटीबेटी व्यवहारकी मर्यादा रखूँ, वहाँ तक कलालकी दुकान रखूँ तो क्या, शमशेर बहादुर हो जाअूँ तो क्या, या विलायती डिब्बेमें बन्द किया हुआ गायका मांस बेचूँ तो क्या? यह सब कुछ करते हुअे भी मैं बनिया जातिमें पूजा जा सकता हूँ! मैं अेक पत्नीके साथ अपना धर्म पालूँ या कंअी सुंदरियोंके साथ लीला करूँ, अुससे मेरी जातिको कोअी सरोकार नहीं! अितना ही नहीं, यह सब होते हुअे जातिका सेठ भी रह सकता हूँ, जातिके लिअे नअी स्मृतियाँ बना सकता हूँ और जातिसे अिनाम अिकराम भी ले सकता हूँ! जाति अिस बातकी

चौकीदारी तो ज़रूर करती है कि मैं कहाँ खाता हूँ, अपने बच्चोंको कहाँ ब्याहता हूँ; लेकिन मेरे चालचलनपर निगाह रखना जातिका काम नहीं! मैं विलायत हो आया हूँ, तो कन्याकुमारीके मन्दिरके भीतरी हिस्सेमें नहीं जा सकता; लेकिन मैं खुले तौरपर व्यभिचार करता हूँ, तो भी अुस भीतरी हिस्सेमें जानेसे मुझे कोअी नहीं रोक सकता!

अिस चित्रमें कहीं अतिशयोक्ति नहीं। यह धर्म नहीं, पापकी हद है। अिसमें वर्णका बचाव नहीं, नाश है। अगर यह पाप दूर न हुआ तो मैं, जो वर्णाश्रमको बचानेकी कोशिश कर रहा हूँ, वर्णकी रक्षा नहीं कर सकूँगा। अिसमें तो वर्णके नामपर ज्यादती ही दिखाअी देती है; ज्यादतीके बजाय वर्णका ही नाश हो जानेका डर है।

अब यह देख लें कि अिन बेशुमार जातियोंकी रक्षा किस तरह होती है। अहिंसाप्रधान धर्म जातिका बचाव हिंसासे करता है। जिसने जातिके बनावटी और बेजा बन्धन तोड़े हों, अुसे समझाने और अुसकी 'भूल' बतानेकी तो कोशिश ही नहीं की जाती, झटपट अुसे जातिसे बाहर निकाल दिया जाता है। यह जाति बाहर करना क्या है सब तरहसे सताना है; अुसका खाना बन्द, अुसका बेटी व्यवहार बन्द, अुसका श्मशान व्यवहार बन्द। यह सज़ा जाति बाहर किअे हुअे आदमीके वारिसोंपर भी अुतरती है! अिसीका नाम है चींटीपर पन्सेरी; या आजकलकी भाषामें कहें तो अेक तरहकी डायरशाही। अिस तरहकी तकलीफसे हज़ार-दोहज़ार आदमियोंकी जातियाँ टिकनेके बजाय मिटनेवाली ही हैं। नाश होना भी चाहिये। लेकिन जबरदस्ती हुआ नाश नुकसान पहुँचाता है। नाश खुशीसे किया गया हो, तभी वह समाजका बल बढ़ाता है।

अच्छेसे अच्छा अुपाय तो यह है कि छोटी छोटी जातियोंकी पंचायतें अिकट्ठी होकर अेक जाति बन जायें, और यह बड़ा संघ दूसरे संघोंके साथ मिल जाय और बादमें अिसे चारमेंसे अेक वर्णमें जगह मिल जाय। मगर आजकलकी सुस्तीमें अैसा सुधार जल्दी होना नामुमकिन-सा ही है।

तो धर्मपर चलना जितना कठिन है, अुतना ही सहल भी है। जैसे हरअेक संघ धर्मको बढ़ा सकता है, वैसे हरअेक आदमी भी बढ़ा सकता है।

व्यक्ति निडर होकर जिसे धर्म समझता है अुसपर अमल करे। फिर अुसे जाति बाहर कर दिया जाय, तो भी अुस बारेमें बेफिकर रहे और जातिकी तीन सजाओंको विनयके साथ माथे चढ़ाकर बन्धनसे छूट जाय। जातिमें भोजन करनेसे कोअी लाभ नहीं। न करनेमें बहुत दफा तो फायदा ही होता है। मृत्युभोजनको तो मैं पाप ही समझता हूँ। लड़केके लिअे लड़की और लड़कीके लिअे लड़का अुसी जातिमें न मिले, तो कोअी चिन्ताका कारण नहीं। जिसे सजा दी गअी है, अुसे वह सजा नहीं मिलती, क्योंकि वह अुपजातियोंकी हस्तीमें मानता ही नहीं। कन्या या वर लायक हो, तो दूसरे संघके सुधारकोंमेंसे जोड़ी मिलनेमें अड़चन बिलकुल नहीं होगी। लेकिन हो तो अुसे सहना ही धर्म है। चरित्रवान और संयमी अैसी तकलीफोंको तकलीफ नहीं मानता। वह अुन्हें खुश होकर सहेगा। मरनेके समय जातिकी तरफ़से मदद न मिले तो अिसमें भी दुःख क्या? दूसरे मददगार मिल जायँगे। मौतगाड़ी*के बारेमें तो मैं लिख ही चुका हूँ। अुसे काममें लेनेसे थोड़ी मददसे काम चल सकता है। और जिसे अुतनी मदद भी न मिले, वह मजदूर कर ले। जिसके पास मजदूरके लिअे भी दाम न हों, वह यह भरोसा रखे कि जो भगवानका दास है, अुसके लिअे भगवान कहीं न कहींसे सहायता भेज ही देगा। सजाका डर छोड़ना सत्याग्रह है। जैसे सरकारसे लड़नेके लिअे सत्याग्रह सुनहरा हथियार है, वैसे ही जातिकी सरकारसे लड़नेके लिअे भी है। दोनों तकलीफें अेकसी हैं। अुनकी दवा भी अेक ही है। जुल्मकी दवा सत्याग्रह है। हिन्दूधर्मकी — हरअेक धर्मकी — रक्षा सिर्फ सत्याग्रहसे ही हो सकती है।

हरअेक धर्मप्रेमीको मेरी विनयके साथ सलाह है कि अुसे जातियोंकी तरह तरहकी खटपटमें न पड़कर अपने फर्जमें पक्का होना चाहिये। फर्ज अपने धर्म और देशके बचावका है। धर्मका बचाव छोटी छोटी जातियोंका बेजा बचाव करनेमें नहीं, धर्मपर चलनेमें है। धर्मके बचावका मतलब सभी हिन्दुओंका बचाव है। सभी हिन्दुओंका बचाव खुद चरित्रवान बननेमें ही है। चरित्रवान बननेका अर्थ है सचाअी, ब्रह्मचर्य, अहिंसा

* देखो अिस हिस्सेके अन्तमें अिस नामका लेख।

वगैरा व्रतोंको पालना, निडर बनना यानी किसी भी मनुष्यसे न डरना, अीश्वर पर भरोसा रखना, अुसीसे डरना, यह जानकर कि वह हमारे सब कामों और विचारोंका देखनेवाला है मैले विचार करनेसे भी डरना, जीवमात्रकी सहायता करना, पराये धर्मवालेको भी दोस्त समझना, दूसरोंकी भलाअीमें अपना समय बिताना, वगैरा वगैरा । अुपजातियोंको तभी निभाया जा सकता है, जब अुनका काम सब बातोंको देखते हुअे धर्म और देशका बल बढ़ानेवाला हो । जो जाति सारी दुनियाका अिस्तेमाल अपने लिअे करेगी, अुसका नाश होगा । जो जाति अपना अुपयोग जगतकी भलाअीके लिअे होने देगी, वह भले ही जिन्दा रहे ।

ता० ७–६–'२५

३

ये बाड़े तोड़ो

[मोरबीके राजा और वहाँकी मोढ़ जातिके किये हुअे स्वागतके जवाबमें दिया हुआ भाषण । — प्रकाशक]

"महाराजा साहब और प्रजा और मोढ़ जातिने मेरा और मेरे साथियोंका जो स्वागत किया और मानपत्र दिया, अुसके लिअे मैं सबका दिलसे शुक्रिया अदा करता हूँ । मोढ़ भाअियोंसे मुझे अितना कहना चाहिये कि आपसे मानपत्र लेनेका मुझे कुछ भी हक नहीं । मुझे सपनेमें भी खयाल नहीं कि मोढ़ जातिकी अेक जातिके तौरपर मैं कोअी भी सेवा कर सका हूँ । कितने ही भाअी अैसा माननेवाले भी हैं कि मैंने नुकसान भले ही पहुँचाया हो, पर सेवा तो नहीं की । घड़ी भरके लिअे यह अिलज़ाम मान भी लूँ, तो भी यह मानपत्र आपकी अुदारता जाहिर करता है । पर मुझे अितनी सी अुदारतासे सन्तोष नहीं होता । क्योंकि यह अुदारताकी निशानी है, तो भी मानपत्र लेनेवाले और देनेवालोंमें जिस तरह यह खानगी समझौता रहता है कि मानपत्र लेनेवाला जो काम कर रहा है अुसके लिअे देनेवालेकी दुआ और राय है, अुस तरहका समझौता हमारे बीच नहीं है । अिसलिअे भी मुझे मानपत्र लेनेमें संकोच है ।

आपकी अिस छोटीसी जातिके बारेमें जो अितना कहता हूँ अुसमें कुछ मर्म है, क्योंकि मैं यह माननेवाला रहा हूँ कि अिन छोटे छोटे बाड़ोंका नाश करना ही चाहिये। मुझे अिस बारेमें शक नहीं कि हिन्दू धर्मके भीतर जातियोंके लिअे जगह नहीं है। और यह मैं मोढ़ या दूसरी जो भी जातियाँ यहाँ हों अुन्हें ध्यानमें रखकर कहता हूँ। सच्चे शास्त्रमें जातिके बारेमें कोअी भी आधार नहीं है। आधार सिर्फ़ चार वर्णोंके लिअे है। ये चार वर्ण बनाकर भगवानने हाथ धो लिये हैं। वर्ण-धर्ममें जातिकी बू तक नहीं।

आप सबको — मोढ़ जातिके जरिये — सुनाना चाहता हूँ कि जातिके बाड़े भूल जाअिये। आज जो जातियाँ हैं अुन्हें आहुतिके बतौर अिस्तेमाल कीजिये और नअी न बनने दीजिये। अिन जातियोंको कुर्बान कर दीजिये और अिनमें कोअी संयमकी बात हो तो अुसका पालन कीजिये। अिन छोटे बाड़ोंके खड्डोंमें पड़े रहेंगे तो बदबू अुठेगी। वैद्य खड्डे भर देनेकी सलाह देते हैं। जिस तरह अुनमेंसे बदबू अुठती है, मच्छर भी पैदा होते हैं और वे घातक साबित होते हैं, अुसी तरह यह समझ लीजिये कि ये जातिके बाड़े भी मनुष्यके लिअे घातक हैं। यह समझ लीजिये कि अीश्वर कभी अैसी घातक रचना नहीं कर सकता।

अपने अनुभवकी बात कहता हूँ। मानेंगे तो सुखी होंगे। समय अपना काम करता रहता है। अिस समयको आड़ा हाथ लगाना हो तो भले ही लगाअिये, पर यह मान लीजिये कि लगाना फ़जूल है। अगर अिन बाड़ोंके बचावमें हम नाहक वक्त गँवाया करेंगे, तो वह सूरजके सामने धूल अुड़ाकर अपनी ही आँखमें डालनेके खेलकी तरह होगा। आपने मुझे मानपत्र न दिया होता तो ये बातें सुनानेका दिल न होता, मौका न मिलता। अिस चीज़को छोटी न मानिये। बहुत बरसोंसे हम वहम और अज्ञानमें पड़े हैं। अिस वहम और अज्ञानको ज्ञानका रूप न देना। आज दुनियामें जुदा जुदा धर्मोंमें मुक़ाबला हो रहा है; और अिसको अुदार भावसे देखेंगे तो जान पड़ेगा कि ये जातियाँ तरक्कीको, धर्मको, स्वराज्यको, और रामराजको–जिसे मैं रट रहा हूँ अुस रामराजको — रोकनेवाली हैं। मैं आपसे पूछता हूँ कि मोढ़ जातिमें अैसा क्या धरा

है कि अुसीके गीत हम गाया करें? जहाँ तहाँ हमारे आचार विचारमें विरोध देखा जाता है। हमारे गीतोंका अर्थ अलग है और हमारा आचरण अलग है। यह तो साँप चला गया और लकीर रह गयी वाली बात हुअी। आचार और विचारमें मेल बैठानेकी ज़बरदस्त कोशिश कीजिये। आपने मानपत्र दिया है, अुसके जवाबमें यह कोशिश आपसे माँग लेता हूँ। मैंने जिस खानगी समझौतेकी बात कही है, अुसे ही आप मान लेंगे तो मुझे लगेगा कि मैंने आपसे मानपत्र लिया और अिस जातिमें जन्म लिया तो कोअी हर्ज नहीं।

मेरा तो आचार और विचारकी अेकताका यज्ञ चल रहा है और मेरे अिस यज्ञके कारण मोढ़ जातिने मेरा वहिष्कार किया है; हालाँकि बादमें मोढ़ोंने देख लिया कि मैं बहिष्कारके लायक़ नहीं, क्योंकि मैंने जातियोंसे फ़ायदा अुठानेका कभी विचार तक नहीं किया। मैं तो अिन बाड़ोंको तोड़नेकी अपनी कोशिशें तेज करना चाहता हूँ। आपको खबर न होगी कि मैंने अपने अेक लड़केका ब्याह जातिसे बाहर किया है। और अिसमें मुझे कुछ भी नुक़सान नहीं हुआ। मेरे लड़केको अेक भक्ति भरे वैष्णव कुटुम्बकी लड़की मिली और अुसके लिअे मेरा लड़का मुझे धन्यवाद देता है। अिस तरह यह कहा जा सकता है कि मैंने तो दूसरी जातिमेंसे अेक जवाहर चुराया है। छोटी छोटी जातिवालोंको मैं कहता हूँ कि तुम्हारी लड़कियाँ कुँवारी रहती हों तो मुझे सौंप देना। मैं दूसरी जातिके अच्छे सुशील लड़कोंके साथ तुलसीके पत्ते या सूतके धागेसे ब्याह दूँगा। मैंने अछूतकी लड़कीको गोद लिया है, फिर भी दूसरी जातिके लोग अपनी लड़की देनेमें संकोच नहीं करते, तो आपको किस लिअे डर हो? मैं तो तीन दिन बाद अेक मोढ़ कन्याके साथ अपने लड़केकी शादी करनेवाला हूँ। अिस तरह मेरा काम चलता रहता है, दिक़्क़त नहीं आती।

अिस तरह मोढ़ जातिके बहाने मैं सब बाड़ेवालोंसे कहना चाहता हूँ कि बाड़े तोड़िये। अठारह वर्ण तो आम लोगोंकी कहावतमें हैं, गुण और कर्मके अनुसार तो चार ही वर्ण हैं। खाने पीनेके आचार अछूतपनके बारेमें हैं। वर्ण तो अेक अैसा सुन्दर पेड़ है जिसकी छायामें बैठकर मनुष्य जाति अपने लिअे छाया और बल पा सकती है। वर्णव्यवस्था

संयमका धर्म है; अिसमें रुपये पैसेका खयाल नहीं; पर धर्मपर चलनेका मक़सद है। ऋषि मुनियोंने अिसकी कल्पना और बनावट धर्मपर चलनेके राजमार्गके तौरपर की है। अिसके बजाय अब यह हमारे स्वार्थों, हमारे अैबों और हमारे भोगोंको बल पहुँचानेका ज़रिया बन गया है। अब शुद्ध वर्णव्यवस्था क़ायम करनेकी कोशिश कीजिये।

ता. २९–१–२८

४

सत्याग्रह और जाति सुधार

सत्याग्रहका अुसूल जैसे जैसे समझमें आता जा रहा है, वैसे वैसे अुसके नये अिस्तेमाल होते जाते हैं। वह सिर्फ़ सरकारका सामना करनेके लिअे ही नहीं, बल्कि जाति और कुटुम्बमें भी काममें लिया जाता दीख रहा है। अेक जातिमें बेटी बेचने का घातक रिवाज है। अेक जवानको अुसे रोकनेकी प्रेरणा हुअी है। यह सवाल अुठा है कि अुसे क्या करना चाहिये। सत्याग्रहका हलका अंग असहयोग है। अिस जातिमें कन्याविक्रय रोकनेका अिस जवानका अिरादा हुआ है। अिरादा शुद्ध है, लेकिन वह असहयोग करे या नहीं, करे तो किस तरह, और किसके साथ? अिस मामलेमें निश्चित राय दे सकना कठिन है। लेकिन कुछ आम क़ायदे तो अैसे सभी मामलोंके लिअे बताये ही जा सकते हैं।

पहले तो असहयोग अेकाअेक किया ही नहीं जा सकता। मुद्दतसे चले आते बुरे रिवाज पलभरमें नहीं मिटाये जा सकते। सुधारका अेक पैर है, अिसलिअे वह लँगड़ाता चलता है। जो धीरज खो बैठे वह शुद्ध असहयोगी नहीं बन सकता। पहली सीढ़ी यह है कि सुधारकको आम लोगोंकी राय अपने हक़में बनानी चाहिये। जातिके सयानोंसे मिलना चाहिये, अुनकी दलीलें सुननी चाहिये, सुधारक बेचारा ग़रीब आदमी होगा, अुसे कोअी पहचानता न होगा और सयाने अुसे दाद न देंगे। तब वह क्या करे? अैसा गरीब हो तो अुसे जान लेना चाहिये कि वह सुधारका

ज़रिया बननेके लिअे पैदा नहीं हुआ। हम सब चाहते हैं कि दुनियासे झूठ अुठ जाय, पर झूठे आदमियोंको कौन समझावे? यह सुधार बहुत ज़रूरी है, फिर भी हम धीरज रखकर कैसे बैठे हैं?

हकीक़त यह है कि सुधारकमें खुदी न होनी चाहिये। सारी खराबियोंकी ज़िम्मेदारी हम क्यों ले लें? हम अितनेसे संतोष मान लें कि हम ख़ुद सच कहते हैं और करते हैं। अिसी तरह जातिकी सड़ाँधके बारेमें भी, हम अपने आचारविचारको साफ़ रखें और दूसरोंके लिअे तटस्थ रहें।

'हुं करुं, हुं करुं, अे ज अज्ञानता,
शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे।'*

यह पद रटते हुअे अिसके अनुसार निरभिमान रहना चाहिये।

जब घमण्ड छोड़कर रहते हुअे भी यह मालूम हो कि हम पर जिम्मेदारी है, तो हम पर अेक खास फ़र्ज़ आ पड़ता है। जैसे, जातिके महाजन या पंच निरभिमान होनेका दावा करके मौजूदा गन्दगीको दरगुजर नहीं कर सकते; क्योंकि सेठ या महाजन बनकर वे जातिकी नीतिके रक्षक बने हैं। अेक भी लड़की बेची गयी, तो अुस निर्दोष बच्चीका शाप अुन्हींको लगेगा।

पर सेठ और महाजन अिस मैलको निकालनेके लिअे कुछ भी नहीं करते। अितना ही नहीं, वे खुद ही बिक्री करते हैं। तब जातिका बेचारा यह ग़रीब सदस्य क्या करे? वह खुद साफ़ हो गया है। जातिके सब मुखियोंसे मिल चुका है। अुन्होंने अिसे हर जगहसे दुत् दुत् करके कुत्तेकी तरह बाहर निकाल दिया है। अुस पर गालियोंकी वर्षा हुअी है। बेचारा नाअुम्मीद होकर थका और अुदास घर आया है। अूपर आकाश और नीचे धरतीके सिवा और कुछ नज़र नहीं आता। अब अीश्वर ही अुसकी पुकार सुननेवाला है। पर अभी सीढ़ी तो पहली ही है। तपस्याके लायक होनेसे पहले अुसकी जो कसौटी होनी थी वह हुअी है। अब वह अुस आवाज़को सुन सकता है, जो अुसके भीतरसे अुठती है। वह अन्तर्यामी

---

* गाड़ीके नीचे चलनेवाला कुत्ता जैसे समझता है कि वही गाड़ी खींच रहा है। वैसे ही 'मैं करता हूँ, मैं करता हूँ' कहना अपना अज्ञान जताना है।

या घटघटमें रहनेवालेसे पूछता है : 'मैंने अपमान सहा है, फिर भी मैं अपने भाअियों पर प्रेम रखता हूँ ? मैं अुनकी सेवा करनेको तैयार हूँ ? मैं अुनकी जूतियाँ खाना भी बरदाश्त कर सकूँगा ?' अगर अन्तर्यामी अिन सब सवालोंका जवाब 'हाँ'में दे, तो वह दूसरा कदम अुठानेको तैयार हुआ है।

अब वह प्यारके साथ असहयोग शुरू कर सकता है। प्रेममय असहयोगका मतलब हकोंका छोड़ना है, फ़र्ज़को छोड़ना नहीं। जातिमें अिस ग़रीब सेवकके हक़ क्या हैं ? जातिमें खाना और जातिमें ब्याहना। ये दोनों हक़ वह नरमीके साथ छोड़ दे, तो अुसे खुद जो कुछ करना था, वह कर चुका। पंचायत अुसे काँटेकी तरह निकाल फेंके। घमण्डके नशेमें चूर पंच यह समझकर कि 'चलो, अेक थाली कम हुअी, लड़की माँगनेवाला अेक कम हुआ,' अुसका नाम ही बहीखातोंमेंसे निकाल डालें। फिर भी वह ग़रीब सेवक निराश न होकर भरोसा रखे कि अुसके बोये हुअे छोटेसे बीजमेंसे बड़ा भारी पेड़ खड़ा होगा। अपना पूरा फ़र्ज़ अदा किये बाद — अुससे पहले नहीं — वह गा सकता है कि 'मुझे काम करनेका हक़ है, फल पानेका कभी नहीं।'

अब यह गरीब तपस्वी बनवासी हो गया। अुसने भीष्मकी सी प्रतिज्ञा की है कि ब्रह्मचारी है तो जातिका मैल धुलने तक वह ब्रह्मचारी रहेगा, और विवाहित है तो भी अपनी स्त्रीके साथ सिर्फ दोस्तका-सा बर्ताव रखेगा। अुसके लड़के हैं तो खुद अुन्हें भी ब्रह्मचर्यसे रहना सिखायेगा। खुद कमसे कम परिग्रह रखेगा, ताकि जातिकी मदद न लेनी पड़े, दूसरेके आगे हाथ न फैलाना पड़े। अिस तरह संन्यासीका-सा रहन सहन करके बस जाना ही अुसका बनवास है। प्रेममय असहयोगमें अुद्दण्डताकी गुंजायश नहीं। अुसमें तो संयमकी रोशनी ही हो सकती है। बोये हुअे बीजको संयमका पानी पिलाना है। जो यह सोचता है कि 'मेरे लड़के न ब्याहे गये तो दूसरी जातिमें ब्याह दूँगा और खानेकी दावत दूसरी जगह करूँगा', वह संयमी भी नहीं और असहयोगी भी नहीं। वह तो ढोंगी है। संयमी असहयोगी तो जातिके ही गाँवमें रहकर तपस्या करेगा। अहिंसाके पास दुश्मनी नहीं टिक सकती। वह त्यागी हिमालयमें बैठकर पंचोंके लिअे अहिंसा रखनेका दावा करके अुनका दिल पिघलानेकी

आशा नहीं कर सकता। पंचोंने जो अुसकी बेअिज्जती की है, अुसमें अेक कारण यह भी है कि अुन्होंने अुसे अविवेकी अुद्धत जवान मान लिया है। अुसे अभी तो यह साबित करना है कि वह गरीब और जवान होकर भी अुद्धत या अविवेकी नहीं है, बल्कि नम्र और विवेकी है।

अैसा करते करते, सेवाके मौकोंपर अपनी जातिके भाअी बहनोंकी सेवा करते करते और फिर भी बदलेकी आशा न रखते हुअे वह देखेगा कि सुधारके काममें दूसरे साथी मिलेंगे। वे असहयोग न करें तो भी अुनका प्रेम अुसके साथ होगा। कारण, जैसे हम संस्कारी भाअियोंको अपने ज्ञान और त्यागके घमण्डमें गालियाँ देते हैं, वैसे हमारा यह संयमी जवान अुन लोगोंको गालियाँ न देगा जो जातिमें रहकर अुसका साथ न दें या विचारमें अुसके साथ होकर भी असहयोगमें शरीक न हों। बल्कि वह अुनसे मुहब्बत करके अुनके दिलोंको जीत लेगा। अुसे रोज यह अनुभव होता जायगा कि प्रेम तो पारस पत्थर है। पर यह तजरबा होनेमें देर भी लगे तो अुसे धीरज न छोड़ना चाहिये और यह भरोसा रखना चाहिये कि प्रेम बीजका नतीजा अनगिनत प्रेम फल ही हो सकते हैं।

मुझे जो खत मिला है, अुसमें पूछा गया है कि हमारा तपस्वी असहयोगी जातिमें भोजन करना छोड़ दे, तो क्या जातिमें जो दोस्त हैं अुनके यहाँ भी खाना बन्द कर दे? हकीकत तो यह होती है कि जातिसे अिस्तीफा मिलते ही पंच गुस्सेमें आकर अुस त्यागीको जातिसे बाहर करेंगे, और जो कोअी अुसके साथ पानी या रोटीबेटी व्यवहार करेगा अुसे सजा देंगे। अिसलिअे व्यक्तियोंके साथ खानापीना छोड़नेका सवाल ही नहीं रहेगा। अिस तरह जाति बाहर करनेका हुक्म निकले, तो संयमीका विशेष धर्म यह होगा कि खुले या छिपे तौरपर जातिके मित्र अुसे खानेका न्योता दें तो भी वह न जाय। कोअी जातिवाला जानबूझकर असहयोगमें शामिल हो, तो अुसका न्योता जरूर मानना चाहिये। अैसा हो भी सकता है।

मगर आम तौरपर यह कहा जा सकता है कि मित्रोंके साथ खाना पीना छोड़नेका मौका ही न आवे। फिर भी मान लीजिये कि आवे तो अुसे छोड़नेकी जरूरत नहीं। हाँ, जो लड़की बेचना ठीक समझते हों, अुनका न्योता वह मंजूर न करे।

अिस परसे हमने देख लिया कि :

१. असहयोग करनेसे पहले लोकमत तैयार करनेके बहुतसे काम करने चाहियें ।

२. असहयोगीमें गुस्सा किये बिना विरोधीकी गालियाँ वगैरा सहनेकी शक्ति होनी चाहिये ।

३. असहयोगमें प्रेम ही होना चाहिये ।

४. असहयोग करनेके बाद असली जगह न छोड़ी जाय ।

५. असहयोगीको कठिन संयम रखना चाहिये ।

६. असहयोगीको अपने अुपायोंपर पूरा भरोसा होना चाहिये ।

७. असहयोगीको फलके बारेमें परवाह न करनी चाहिये ।

८. असहयोगीके हर कदममें विवेक, विचार और नम्रता होनी चाहिये ।

९. असहयोग करनेका अधिकार या धर्म सबको नसीब न होता । अधिकारके बिना असहयोग बेकार होता है ।

यह सच है कि कितनोंको या बहुतोंको अूपरके नियम असंभव लगेंगे । कड़े संयमके बिना शुद्ध असहयोग हो नहीं सकता । फिर, जिस मामलेपर हमने विचार किया है अुसमें तो वह तपस्वी खुद ही करनेवाला है, खुद ही भोगनेवाला है, खुद ही सेनापति और खुद ही सिपाही है । अुसमें कमी रहे तो अुसके माथे तो निराशा लिखी ही समझनी चाहिये । अिसलिअे अैसे स्वतंत्र असहयोगीके लिअे तो असहयोग न छेड़ना ही अक़्लमंदीकी पहली निशानी है । पर छेड़ देनेके बाद तो जान चली जाय पर बात न छोड़नी चाहिये ।

दूसरा सवाल यह अुठता है कि अितना संयम रखकर जाति जैसी तंग संस्थामें सुधार भी क्या करना ? फिर, दूसरे कहेंगे कि हमें जब जातिको ही मिटाना है, तब कन्याविक्रय वग़ैरा बुराअियोंके पीछे क्या पड़ना ? यह सवाल बेमौक़ा है । हमारे सुधारकका सवाल जातिके लिअे ही है । अगर कुटुम्बके साथ असहयोग करनेकी बात ठीक समझी जाती है, तो जब तक जातियाँ हैं, तब तक अुनके साथ असहयोग करनेकी बात भी ठीक समझी जानी चाहिये ।

ता० १३-४-१९२४

५

बहिष्कारका हथियार

(' जातपाँतकी हालत ' नामक टिप्पणी)

मारवाड़ी भाअियोंका सम्मेलन कलकत्तेमें था । अुसमें मुझे ले गये थे । वहाँ सिर्फ़ जाति सुधारकी ही बात थी और अुसीके बारेमें बहुतसे सवालोंपर चर्चा हुअी थी । अैसी जगह पर मैं क्या बोलूँ ? सुधारके बारेमें बोलनेके बजाय मैंने बहिष्कारके अुसूलकी बात ही अुनसे ज्यादा की । मैं जानता था कि बहिष्कारने अुनमें भयंकर स्वरूप पकड़ लिया था और भीतर भीतर ज़हर फैला रखा था । अिस भाषणका सार सभी हिन्दुओं पर लागू होनेके कारण यहाँ देता हूँ ।

बहिष्कारका हथियार जब शुद्ध मनुष्योंके हाथमें होता है, तब अुसका अच्छा अुपयोग होता है । नहीं तो, वह निरी हिंसाका स्वरूप पकड़ कर अिस्तेमाल करनेवालेका और जिसके खिलाफ़ अिस्तेमाल किया जाय अुसका भी नाश कर सकता है ।

आजकल हम बहिष्कार करनेके अधिकारी नहीं रहे । अेक बाप अपनी दस सालकी अुम्रमें विधवा हुअी लड़कीको फिरसे ब्याह दे, तो क्या अुसे और अुस लड़कीको और अुसे ब्याहनेवालेको जाति बाहर करनेमें कोअी पुण्य है ? क्या जो अनीति करते हैं, दिन दहाड़े व्यभिचार करते हैं, शराब मांस खाते पीते हैं, अुनका बहिष्कार होता है ? जो विचारमें व्यभिचार करते हैं, अुनका क्या होता है ? मतलब यह कि जब तक हममें शुद्धि नहीं होती, तब तक कौन किसका बहिष्कार करनेका अधिकारी है ? कोअी भी नहीं ।

बहिष्कारका नतीजा नयी जातियाँ पैदा करनेका ही स्वरूप पकड़ता है । आज जिन्हें हम तड़ें कहते हैं, वे ही कल जातियाँ बन जायँगी । अिस प्रकार, अिस ज़मानेमें जहाँ जातियाँ बिगड़ रही हैं, वहाँ बहिष्कारमें हर तरहसे बिलकुल नुक़सान ही है ।

वर्णाश्रम तो धर्म है, पर बहुतसी जातियाँ धर्म नहीं। वर्णाश्रमको बचाना चाहिये। जातियोंको मिटाना चाहिये। अिसलिअे सुधारकोंका हौसला बढ़ाना चाहिये। कुछ भी कीजिये, अिस तरहका सुधार रुक तो सकता नहीं। क्योंकि हिन्दू धर्ममें गंदगी तो बहुत फैल गयी है और अब चारों तरफ़ जाग्रति हो गयी है।

समझदारी अिसमें है कि सुधारको धर्मकी शकल दी जाय। पर जहाँ सुधार अच्छा न लगे, वहाँ भी बहिष्कारमें तो बुराअी ही है।

मारवाड़ी जातिमें बुद्धि भी है और हिम्मत भी। अुसने हिन्दुस्तानका भला भी किया है और बुरा भी। मित्रके नाते बुराअीकी बात कहना भी मेरा धर्म है। परमात्मा अुन्हें अिससे बचावे और अुनका भला करे!

जिनका बहिष्कार हो, वे मर्यादामें रहकर विवेकसे जहरको बढ़नेसे रोकें और अपनी नीति पर क़ायम रहें।

ता० २-८-'२५

६

जाति बाहर

जिस समाजके पंच बिना विचारे, सिर्फ मोहके, वहमके, अज्ञानके या अीर्ष्याके वश होकर बहिष्कार करते हैं, अुस समाजमें रहनेसे निकल जाना बेहतर है; क्योंकि जहाँ अेक भी सच्चे आदमीको समाज छोड़े वहाँ दूसरे सच्चे लोग कैसे रह सकते हैं?

यह तो हुअी अुसूलकी बात। अिस पर अमल सदा न हो सके तो भी यह याद रखना जरूरी है। देखा जाता है कि आजकल पंचोंकी तकलीफ़ बढ़ती जा रही है। अछूतको खिलाना जुर्म समझनेवाले पंच भी मौजूद हैं। अछूतको अेक पंगतमें बैठाने और अुसकी राय देनेवाले हिन्दू पापी माने जाते हैं। अैसे पापियोंके समाजमें हममें जो भी पुण्यात्मा हों, वे सभी शामिल हो जायँ।

लेकिन बहिष्कार कैसे बर्दाश्त हो? खाना न मिले, धोबीको बंद करें, हज्जामको बन्द करें। डॉक्टरको बन्द क्यों न करें? अखीरमें मार डालना ही तो बाक़ी रहा न? बहिष्कृत सुधारकमें मरने तक अटल रहनेकी शक्ति होनी चाहिये। अछूतोंकी ठेठ तक सेवा तो शुद्ध हुअे हिन्दू मरकर ही करेंगे। जातिमें खानेकी ज़रूरत भी क्या? घर बैठे ख़ुद पकाकर शान्तिसे क्यों न खाया जाय? धोबी कपड़े न धोये, तो हाथसे धोकर पैसे बचाना चाहिये। हजामत हाथसे करनी तो आज मामूली बात है। लेकिन लड़की कहाँ ब्याही जाय? और लड़केके लिअे लड़की कहाँ ढूँढें? अगर जातिमें ही लड़का या लड़की देखना है और वह न मिले तो संयम पाला जाय। अितने संयमकी शक्ति न हो, तो दूसरी जातिमें ढूँढा जाय। अुसमें भी न मिले तो जो न हो सके अुसके बारेमें अुदासीन रहा जाय।

वर्ण तो चार ही हैं। जातियाँ भले चार हों या चालीस हजार। अुपजातियोंको तो मिला देना ही ठीक है। छोटे छोटे बाड़ोंसे हिन्दू धर्मका बहुत नुकसान हुआ है। जो वैश्य हैं वे सारे हिन्दुस्तानके वैश्योंमेंसे किसीसे भी नाता क्यों न जोड़ें? गुजराती ब्राह्मण अपने जैसे आचार-विचार वाले किसी भी ब्राह्मणके यहाँ वर-कन्या क्यों न ढूँढें? अितना सुधार करनेकी भी हमारी हिम्मत न हो, तो हिन्दू धर्मके बहुत तंग हो जानेका डर है। बंगालकी लड़की गुजरातमें आये और गुजरातकी बंगालमें जाय, तो बिलकुल बुरी बात नहीं है। वर्णको बचानेवाले अगर अुपजातियोंको रखने चलेंगे, तो अुपजातियाँ तो जाती ही रहीं, वर्णको और खो बैठेंगे।

आज वर्ण भी छिन्नभिन्न तो हो ही गया है। विचारवान स्त्रीपुरुषोंको अिस विषयका मन्थन करनेकी पूरी जरूरत है। पहले तो गुजरातके वर्ण मिलकर अपना व्यवहार फैलावें, तो कितने आगे बढ़े समझे जायँ? सब वर्ण अपनी बहुतसी अुपजातियोंको अेक नहीं कर सकते? अगर विचार करने जितना अुत्साह भी अुपजातियोंके पंचोंमें न रहा हो, तो व्यक्तियोंको पहल करनी चाहिये।

लेकिन बात तो मुझे बहिष्कारकी करनी थी। अुपजातियोंके बारेमें मैंने जो विवेचन किया है, वह बहिष्कृतोंकी शान्तिके लिअे किया है। जुल्म घरका हो या बाहरका, अुसे मिटानेका अुपाय अेक ही है। बहिष्कृतका रास्ता अभी तो बहुत ही सीधा है। लेकिन मान लीजिये कि हमारे मौजूदा वातावरणमें अुपजातिसे निकाला हुआ मनुष्य वर्णसे भी निकल जाय, तो? तो भी क्या हुआ? अकेले खड़े रहनेकी शक्ति जुटा लेनेवाले सुधारक आजकल हिन्दुस्तानमें हर जगह देखे जाते हैं।

लेकिन अकेले खड़े रहनेकी हिम्मतवाले जो शुद्ध आदमी हों, अुनमें गुस्सा न होगा, द्वेष न होगा, बर्दाश्त होगी। वे जालिमका तिरस्कार न करेंगे, वे जालिमका भी भला चाहेंगे; 'और मौका मिलनेपर अुसकी सेवा करेंगे। सेवा करनेका धर्म कोअी कभी न छोड़े। सेवा लेनेका हक़ तो है ही कहाँ? धर्म तो कहता है: मैं सेवा ही हूँ। मुझे विधाताने अधिकार दिया ही नहीं।' जिसे मिला नहीं वह खोये क्या? बहिष्कृतको सेवा लेनेकी अिच्छा ही छोड़ देनी चाहिये। यह अजीब कानून है जरूर कि अैसे लोगोंको सेवा मिल ही जाती है। लेकिन सेवकको अिससे कोअी सरोकार नहीं। सेवा मिलनेकी आशासे जो सेवा छोड़नेका दावा करते हैं, वे तो डाकू हैं और वे नाअुम्मीद ही रहेंगे।

अछूतोंकी सेवा करनेवालो, रेतकी तरह नम्र रहकर जो तुम्हें रौंदे अुसे रौंदने दो। धरती भी पैरों तले कुचली जाती है, फिर भी हमें अभयदान देती है। अिसीलिअे हम अुसे माँ कहते हैं और रोज सुबह अुठकर अुसकी स्तुति करते हैं: 'समुद्र जिसका कपड़ा है, पहाड़ जिसकी छातियाँ हैं, विष्णु जैसे रक्षक जिसके पति हैं, अुसे करोड़ों नमस्कार हों। हे माता, हमारे पैर तुम्हें छूते हैं, अिसके लिअे हमें माफ करना।' जिन सेवकोंने अैसी मातासे बढ़ियासे बढ़िया नम्रता सीखी है, अुनका बहिष्कार हो तो अुसमें अुनका कोअी नुकसान नहीं।

ता० ११-१०-'२५

७

बहिष्कार हो तो ?

अेक भाअी लिखते हैं :

"आजकल कोअी कोअी जाति अछूतपन न माननेवालोंको, भले ही वे कितने ही अच्छे गुणोंवाले हों, जातिसे निकाल देती है। पर शास्त्रोंने जिसे बड़ा भारी पाप माना है अुसके बारेमें पंच कुछ नहीं करते। जैसे, लड़की बेचना शास्त्र महापाप मानते हैं। पर अिस बारेमें पंच कुछ नहीं करते। और अछूतपनके बारेमें दोषी समझे जानेवालोंको बिना पूछे और बिना कोअी सफ़ाअी माँगे जातिसे निकाल देते हैं। अितना ही नहीं, निष्पक्ष निर्णायकसे फैसला करवानेकी बात भी अुन्हें मंजूर नहीं। अैसे जालिम पंचोंको अदालतमें घसीटा जाय या नहीं?"

अिसका जवाब मैं तो अेक ही दे सकता हूँ: पंच कितना ही जुल्म करें, फिर भी अुन्हें अदालतमें न घसीटा जाय। अुनकी जो मरज़ी हो सज़ा दें। वह सज़ा भोगनेसे पंचोंका गुस्सा कम होता है और वे खुद पछताते हैं। फिर, जहाँ पंच अन्याय करते हैं, वहाँ तो बहिष्कार स्वागत करनेकी चीज़ माननी चाहिये। जिस जातिमें कन्याविक्रयका अत्याचार होता हो, जिस जातिमें ढोंग हो, जिसके पंच शराब मांस खाने पीनेको दरगुज़र करते हों, अुस जातिमें रहनेसे फ़ायदा हो ही नहीं सकता। जाति तो रूढ़ि है, धर्म नहीं। जातिमें रहकर मनुष्य कितनी ही सहूलियतें पाता है। लेकिन जहाँ जातिकी नीति बिगड़ जाय, वहाँ अुन सहूलियतोंको लेना न चाहिये। जिस दलीलसे हमने सरकारके साथ असहयोग किया, अुसीको जाति पर लागू करके अुसके साथ भी असहयोग हो सकता है।

लेकिन यहाँ तो वह सवाल ही नहीं। यहाँ तो जाति बहिष्कार करती है। अिस बहिष्कारको अच्छा मौक़ा समझकर अुसका स्वागत करना चाहिये। लेकिन अिस तरह अच्छा मौक़ा वही मान सकता है, जिसने अपना धर्म पाला है, जातिकी सेवा की है और जातिके नीति बढ़ानेवाले हुक्मको हमेशा खुशीसे माना है। संयमी ही बहिष्कारका स्वागत कर सकता

है। मनमानी करनेवाला बहिष्कारसे तंग आ जाता है। लेकिन अछूतपन मिटाना स्वच्छंदीका नहीं, संयमीका काम है। अछूतपनको मिटाना भोगोंको बढ़ानेके लिअे नहीं, बल्कि सेवाके मौक़े बढ़ानेके लिअे है; सेवासे किसीको बहिष्कृत न रखनेके लिअे है।

ता० २४–५–'२५

८

खुदको ही करना पड़ेगा

खंभातसे अेक नौजवान लिखते हैं :

"हमारी जैन भावसार जातिमें बहुतेरे 'नवजीवन'के पढ़नेवाले हैं। अिसलिअे 'नवजीवन'में आनेवाले समाज सुधारके लेखोंको पढ़कर कुछ समयसे अुन्हें पुरानी कुरीतियोंसे नफ़रत पैदा हुअी थी और वक्त आने पर अुन रिवाजोंको मिटा देनेकी अिच्छा थी। थोड़े दिनोंकी कोशिशसे मौसर या मृत्यु-भोज और पहले गर्भके समयके भोजनमें शरीक न होनेकी २०–२५ जवानोंने प्रतिज्ञा या अहद किया और बड़े माने जानेवाले लोगोंका गुस्सा सह लिया। औरोंको भी समझाया, मगर वे अिस तरहके भोजन छोड़नेको तैयार न थे। अब प्रतिज्ञा लेनेवाले तो ख़ूब मज़बूत हैं, पर अुनकी औरतें माँ बाप वग़ैरा घरके लोग अुन्हें छोड़कर अुन भोजोंमें शरीक होते हैं। क्या अिस तरह खानेको जाना अुनके लिअे अच्छा समझा जाय? आप कुछ अैसा लिखेंगे, जिससे अुनपर असर पड़े? अिन मामलोंमे पत्नीको अपने पतिकी नक़ल करनी चाहिये या नहीं? अैसे खानोंमें शरीक होनेमे जैन साधु किसी भी तरहका हर्ज नहीं समझते। क्या यह ठीक है?"

शादी या अैसे ही दूसरे मौक़ोंपर दिया भोजन मैं माफ़ीके लायक़ समझता हूँ। पहले गर्भके समय दिया हुआ खाना शर्मकी बात मानता हूँ। और मरने पर खिलाना पाप गिनता हूँ, फिर भले ही वह बारहवेंका हो या तेरहवेंका, बूढ़ेके बाबत हो या जवानके। मुझे तो सभी जीमन या भोज फ़जूल और जंगली लगते हैं। शरीरकी रोजमर्राकी जरूरतोंको हम कैसे भोगका साधन बना डालते हैं, यह मेरी बुद्धि समझ नहीं सकती।

भले ही अैसी किसी चीज़को मेरी कमज़ोरी सह भी ले, तो भी अगर हम रूढ़िके गुलाम न बन गये हों, तो हमें मृत्यु-भोज और गर्भ-भोजमें तो हरगिज़ न जाना चाहिये। अच्छी बात तो हमारा अपना शुद्ध आचरण है। मगर हम करते हैं अुसी तरह माँ बाप, स्त्री या बड़े लड़के लड़की न करें, तो अुसका दुःख न होना चाहिये। और अुनपर जब्र न होना चाहिये। हम यक़ीन रखें कि हमारा अपना आचरण शुद्ध रखनेसे अुसका चेप दूसरोंको भी लगेगा। मुझे पता नहीं जैन साधु क्या करते हैं। लेकिन अिसमें शक नहीं कि समाजकी कुरीतियोंकी वे परवाह न करते हों तो यह ठीक नहीं।

ता० २९–७–'२८

९

विद्यार्थियोंका सुन्दर सत्याग्रह

मैं 'नवजीवन'में बहुत बार लिख चुका हूँ कि सत्याग्रह सब जगहके लिअे होनेके कारण जैसे राजनीतिमें वैसे ही समाज और धर्मके मामलोंमें भी किया जा सकता है। जैसे हाकिमोंके खिलाफ़ वैसे ही समाजके, कुटुम्बके, माँके, बापके, स्त्रीके, और पतिके खिलाफ़ यह दिव्य शस्त्र अिस्तेमाल किया जा सकता है; क्योंकि अिसमें हिंसाकी तो बू तक नहीं हो सकती। और जहाँ अहिंसा यानी प्रेम ही प्रेरणा देनेवाली चीज़ है, वहाँ किसी भी हालतमें निडर होकर अिस हथियारको चलाया जा सकता है। अिस तरहका प्रयोग धर्मजके साहसी विद्यार्थियोंने धर्मजके समाजके खिलाफ़ कुछ दिन पहले ही करके बता दिया है। अुसके बारेमें काग़ज़ मेरे पास आये हैं। अुनमें से नीचे लिखी हक़ीक़तें मिलती हैं।

थोड़े दिन पहले अेक गृहस्थने अपनी माँके बारहवें पर जाति-भोज दिया। भोजके पहले दिन नौजवानोंमें अिस पर बड़ी चर्चा हुअी। अुन्हें और कुछ गृहस्थोंको अिस तरहके खानोंसे नफ़रत तो पैदा हो ही गयी थी; और विद्यार्थियोंके मण्डलने तय किया कि अिस बार कोअी

क़दम ज़रूर अुठाया जाय। आखिर बहुतोंने नीचेकी तीनों या अुनमेंसे अेक या दो प्रतिज्ञाअें लीं :

> " सोमवार ता. २३–१–१९२८ को बारहवेंके सिलसिलेमें जो बड़ा भोज होनेवाला है अुस तरहके बड़े भोजोंमें (१) हम पंगतमें बैठकर परोसा लेकर नहीं खायेंगे, (२) अिस रूढ़िके खिलाफ़ सख्त विरोध बतानेके लिअे अुस वक्तके लिये अुपवास रखेंगे; (३) अिस काममें हमारे घर या कुटुम्बकी तरफसे जो भी तकलीफ़ आयगी अुसे शांति और राजीखुशीसे सहेंगे।"

और अिसलिअे भोजके दिन बहुतेरे विद्यार्थियोंने, जिनमें कितने ही छोटे बच्चे थे, अुपवास किया। अिस कामसे विद्यार्थी मण्डलने बड़े माने जानेवाले लोगोंका ग़ुस्सा अपने सिर ले लिया। अैसे सत्याग्रहमें विद्यार्थियोंको माली जोखम भी कम नहीं अुठाना पड़ती। बड़ोंने विद्यार्थियोंको मिलनेवाली आर्थिक सहायता और मकानोंकी सहूलियत वापस ले लेनेकी धमकी दी। पर विद्यार्थी पक्के रहे, भोजके दिन २८५ विद्यार्थियोंने भोजनमें भाग नहीं लिया और बहुतोंने तो अुपवास भी किया।

अिन विद्यार्थियोंको धन्यवाद मिलना चाहिये। मैं अुम्मीद रखता हूँ कि हर जगह विद्यार्थी समाज सुधारके कामोंमें आगे बढ़कर हिस्सा लेंगे। जैसे स्वराज्यकी कुंजी विद्यार्थियोंकी जेबमें है, वैसे ही समाज सुधार और धर्मरक्षाकी कुंजी भी वे अपनी जेबमें लिये फिरते हैं। हो सकता है कि लापरवाहीके कारण अपनी जेबमें पड़ी हुअी चीज़का अुन्हें पता न हो। पर मुझे अुम्मीद है कि धर्मजके विद्यार्थियोंका काम देखकर दूसरे विद्यार्थी अपनी शक्तिका माप कर लेंगे। मेरे खयालसे अुस स्वर्गवासी बहनका सच्चा श्राद्ध तो नौजवानोंने अपने अुपवाससे किया है। जिसने भोज दिया अुसने अपना रुपया बर्बाद किया और ग़रीबोंके सामने खराब मिसाल रखी।

अमीरोंको परमेश्वरने रुपया दिया है तो वे अुसे परमार्थके काममें लगायें। अुन्हें समझना चाहिये कि गरीब शादी या गमीके मौकोंपर जातिको खिला नहीं सकते। अुन्हें यह भी जानना चाहिये कि अिस खराब रूढ़िसे बहुतसे ग़रीब पामाल हो गये हैं। जाति-भोजमें जो

रुपया खर्च हुआ वही ग़रीब विद्यार्थियोंके, गरीब विधवाओंके, गोरक्षाके, खादीके या अछूतोंके लिअे लगाया जाता तो वे बढ़ निकलते और मरे हुअेकी आत्माको शान्ति मिलती। भोजन तो भुला दिया गया, अुसका किसीको लाभ नहीं मिला और विद्यार्थियों व धर्मजके दूसरे समझदार लोगोंको अुससे दुःख हुआ।

कोअी यह शंका न करे कि जिस भोजके लिअे सत्याग्रह हुआ वह भोज बन्द न रहा, तो सत्याग्रह किस कामका। विद्यार्थी खुद जानते थे कि अुनके सत्याग्रहका तुरन्त असर होना बहुत कम सम्भव है। लेकिन अुनमें जाग्रति क़ायम रहेगी तो हम यह मान सकते हैं कि दुबारा किसी सेठकी बारहवाँ करनेकी हिम्मत न होगी। अिसके लिअे सदा धीरज और आग्रहकी ज़रूरत होती है।

क्या पंच माने जानेवाले बूढ़े लोग समयका विचार नहीं करेंगे? वे रूढ़िको समाज या देशकी तरक्कीका अेक ज़रिया माननेके बजाय कब तक अुसके ग़ुलाम रहेंगे? वे अपने बच्चोंको ज्ञान तो लेने देंगे फिर वे अुस ज्ञानको अिस्तेमाल करनेसे कब तक रोक सकेंगे? धर्म अधर्मका विचार करनेवालोंमें जो शिथिलता है अुसे छोड़कर वे होशियार होकर सच्चे पंच कब बनेंगे?

ता. २६–२–'२८

१०

मरनेके बादका भोजन

मरनेके बाद जो जातिभोज दिया जाता है, अुसे मैंने जंगली बताया है। अुस बारेमें अेक साहब बड़े दुःखसे लिखते हैं :

> "आप सनातनी हिन्दू होनेका दावा करते हैं। आप गीताजी और रामायणके पुजारी हैं। फिर भी मृत्युभोज आदि जो क्रियायें की जाती हैं, अुन्हें जंगली कैसे कह सकते हैं, यह समझमें नहीं आता। शास्त्र तो कहते हैं कि मरनेके बाद ब्राह्मणोंको खिलानेसे मरे हुओंको अच्छी गति मिलती है, अुन्हें तसल्ली होती है। अब मैं अिनमेंसे किसे सच्चा मानूँ?"

मैं कअी बार लिख चुका हूँ कि जो कुछ संस्कृतमें लिखा हो, अुस सबको धर्मशास्त्र न मानना चाहिये। अिसी तरह यह भी नहीं मानना चाहिये कि धर्मशास्त्र समझी जानेवाली मनुस्मृति वगैरा मानी हुअी किताबों या धर्मग्रंथोंमें जो कुछ आजकल हम पढ़ते हैं, वह सब असली लिखनेवालेका ही लिखा है; या अैसा हो तो भी वह सब आज अक्षरशः मानने लायक है। मैं तो नहीं मानता।

कुछ अुसूल सनातन हैं। अुन अुसूलोंको माननेवाला सनातनी है। लेकिन यह माननेकी कोअी वजह नहीं कि अुन सिद्धान्तोंसे जो जो आचार या अमल जिस जिस जमानेके लिअे बनाये गये हों, वे सभी दूसरे जमानेमें भी सच ही हैं। जगह, वक्त और हालातके कारण आचार बदलते हैं। मरनेपर भोज देनेका पहले किसी समयमें अर्थ रहा होगा, लेकिन आज हमारी बुद्धि अुसको समझ नहीं सकती। जहाँ बुद्धि लगाअी जा सकती है, वहाँ श्रद्धाकी गुंजायश नहीं होती। जो चीज बुद्धिसे परे है, अुसीके लिअे श्रद्धा कामकी है। यहाँ तो बुद्धिसे हम देख सकते हैं कि मरनेके बाद भोजन करानेमें धर्म नहीं। अनुभवसे हम देख सकते हैं कि दूसरे धर्मोंमें अिस चीजको जगह ही नहीं दी गयी। तब हिन्दूधर्ममें अैसे भोजोंको जगह देनेके लिअे संस्कृतके श्लोकोंके सिवा हमारे पास दूसरे मजबूत कारण होने चाहियें। हिन्दू धर्मशास्त्रोंके

या यों कहिये कि सभी धर्मशास्त्रोंके अुसूलोंके साथ अैसे भोजोंका कोअी मेल नहीं बैठता। अैसे भोजोंसे होनेवाले नुकसान हम आँखोंसे देख सकते हैं। अैसे प्रत्यक्ष प्रमाणोंके सामने संस्कृतके श्लोक किस कामके? मृत्यु-भोजको न बुद्धि कबूल करती है, न दिल करता है, और न दूसरे देशोंका तजरबा करता है। अैसे भोजको जंगली माननेके लिअे अिससे ज्यादा कारण मेरे पास नहीं और न किसीके पास होनेकी आशा रखी जा सकती है। जैसे सभी पुरानी बातोंको झूठ माननेवाले भूल करते हैं, वैसे ही सच्ची समझनेवाले भी गलती करते हैं। पुरानी हो या नअी, सभी चीजोंको बुद्धिकी कसौटीपर चढ़ाना ही चाहिये; और जो चीज अुसपर न चढ़ सके, अुसे बिलकुल छोड़ देना चाहिये।

ता० २०–६–'२६

११

पहले गर्भ वगैराके भोज

जंबुसरसे श्री मणिलाल छत्रपति लिखते हैं कि अुनके घरमें पहले गर्भका मौका आनेपर अुन्होंने अन्तमें जाति भोज न देनेकी हिम्मत की है। अिसपर मैं अुन्हें बधाअी देता हूँ। कांग्रेसका काम करनेवाले सेवकोंमें अितनी हिम्मत होना कोअी अनोखी बात समझनी ही न चाहिये। अैसी हिम्मत होनेके लिअे अेक ही बातकी जरूरत होती है, और वह है जाति बाहर होनेकी निडरता। जाति बाहर होनेका मतलब अितना ही है कि हम जाति भोज वगैरामें न जा सकें और लड़के लड़कीका लेनदेन जातिमें न कर सकें। जब खानेका ही बहिष्कार करना है, तो खानेका न्योता न मिलना तो और भी अच्छा, जंजालसे छूटे। और लड़के लड़कीकी सगाअी अुस जातिमें न हो तो सहजमें जातिके बाड़े तोड़े जा सकते हैं। अगर देशको अुठाना है, तो ये बाड़े तो तोड़ने ही पड़ेंगे। अिस तरह श्री मणिलाल छत्रपति जैसे सुधारकोंको किसी भी बातका डर रखनेकी जरूरत ही नहीं।

ये भोज सभ्य आदमीको जंगली बनाते हैं, गरीबोंको कुचलते हैं और देशको कलंक लगाते हैं। यह हमें जरा भी शोभा देनेवाली बात नहीं कि रुपये पैसेसे सुखी लोग भी खानेके पीछे पागल हो जायँ। अिसलिअे श्री मणिलाल छत्रपति जैसे सुधारक जैसे जैसे बढ़ते जायँगे, वैसे वैसे कुरीतियाँ कमजोर पड़ती जायेंगी। अैसे भोजोंसे बचनेवाले रुपयेका कुछ हिस्सा सुधारकोंको सार्वजनिक काममें या जो लोग जातिके बाड़ेमें ही रहना चाहते हों, अुनकी सात्विक सेवामें लगाना चाहिये। जहाँ पंच अज्ञानके वश होकर चलते हैं, वहाँ वे अपना बड़ा पद छोड़ देते हैं और अिज्जतके लायक नहीं रहते। अिसलिअे जातिके सुधारमें लगाया हुआ रुपया भी सीधी तरह काममें आये, अिसकी सावधानी दान करनेवालेको रखनी चाहिये।

ना० २३-९-'२८

१२

कर्ज़ करके भोज

वढ़वाणसे अेक दुकानदार लिखते हैं :

"मैं आजकल अनाजकी दुकान चला रहा हूँ। बहुतेरे अछूत भाअी मेरे यहाँसे अनाज लेते हैं। अुन लोगोंके साथ काम पड़नेसे मुझे बहुतसे अनुभव हो रहे हैं। अेक अछूत भाअी हैं। अुनके दो बड़े भाअी मर गये हैं। अुनके बालबच्चे बहुत हैं। विधवाअें अिधर अुधरका काम करके बच्चोंको पालती हैं। अिस बीचमें बूढ़ा मर गया। अुसके पीछे अुसका अेक लड़का है। अुसके पास अनाजके दाम भी देनेको नहीं हैं। पर जाति अुसे पाँच सौ रुपया क़र्ज़ करके मिठाअी और नमकीनका भोजन करानेको कह रही है। अिस तरह अछूत भाअियोंमें जो ब्याज खाअू लोग हैं, वे अैसा काम कराते हैं। अिसका क्या अुपाय है?"

अिसका अेक अुपाय तो सीधा है, पर कठिन है। अूँचे कहानेवाले वर्णके लोग जो करते हैं, वही अछूत भी करते हैं। अिसलिअे 'अूँचे' वर्ण भोज देना छोड़ दें, तो अछूत भाअी 'अूँचे' वर्णसे सीखी हुअी बुरी आदतें सहजमें छोड़ देंगे, पर अैसा शुभ अवसर आनेमें देर तो लगेगी ही। अिसलिअे अभी तो यही रास्ता है कि अछूत भाअियोंको अपनी हालतकी जानकारी कराकर अुनसे सुधार कराया जाय। बहुत लोग तो डरके मारे मौसर करते हैं। अछूतोंमें भी जाति बाहर होनेका डर तो है ही। सच पूछा जाय तो 'अूँचे' वर्णसे ज्यादा डर है। 'अूँचे' वर्णके जाति बाहर हुअे सज्जनके पास सारी हिन्दू दुनिया है। लेकिन जाति बाहर हुअे अछूतका सिर्फ़ भगवान ही बेली है, या वह स्वार्थके मारे दूसरा धर्म अपना लेता है। जब अछूत भाअियोंको अपना ज्ञान होगा, तब सुधार करनेकी अुनकी शक्ति 'अूँचे' वर्णकी शक्तिसे बहुत बढ़ जायगी। 'अूँचे' वर्णके रास्तेमें दूसरे स्वार्थ और लालच आ जाते हैं; अछूतोंमें समझ और निडरता आ जानेके बाद अेक भी चीज़ आड़े नहीं आ सकती। अुनमें अैसी समझ और निडरता लाना 'अूँचे' वर्णका धर्म है, प्रायश्चित्त है।

ता० १४-४-'२९

१३

जाति भोज

यह महीना शादियोंका है। ब्याहके सिलसिलेमें जाति भोज वगैरा भारी खर्चके काम किये जाते हैं। जिसके पास रुपया है, वह जाति भोज वगैरामें खर्च न करे, यह कहना तो ज्यादती समझी जायगी। लेकिन अैसे भोज आज फ़र्ज़ बन गये हैं। अिससे कुटुम्बके लिअे अुनका बोझ असह्य हो गया है। अैसे भोज अपनी .खुशीकी चीज़ होने चाहियें। अितना ही नहीं, बल्कि धनवान कुटुम्बोंको खुद संयम करके अिस बारेमें अुदाहरण रखना चाहिये। बचे हुअे रुपयेका अुपयोग शिक्षाके लिअे या समाजकी तरक्कीके दूसरे कामोंमें हो, तो अुससे अुस जातिको और अिस तरह सारी जनताको फायदा पहुँचे। शादीके वक़्त जाति भोजका रिवाज बन्द होना सिर्फ अच्छा ही है, मृत्यु-भोज बंद करना ज़रूरी है। मृत्यु भोजमें तो मुझे पाप ही दीखता है। अिस भोजमें मुझे कुछ भी रहस्य नहीं दिखाअी देता। भोजन आनंदका मौक़ा माना गया है। मौत रंजका मौक़ा है। समझमें नहीं आता कि अुस वक़्त भोज कैसे दिया जाय। सर चिनुभाअीके मरने पर जो भोज दिया गया था, अुसमें स्वर्गवासीके मानकी खातिर मैंने हाजिरी दी थी। अुस वक़्तका नज़ारा, अुस वक़्तका खानेवाली अलग अलग जातियोंका झगड़ा, खानेवालोंकी मनमानी वगैरा बातें आज भी मेरी आँखोंमें नाच रही हैं। अुनमें मुझे मरनेवालेके लिअे कहीं भी आदर न दिखाअी दिया। शोकको तो वहाँ जगह ही कहाँ? अैसे सुधारके लिअे भी समय चाहिये, अिससे रूढ़िकी ताक़त और हमारी ढिलाअी ज़ाहिर होती है। अैसा सुधार पंचायत न करे तो भी व्यक्ति तो कर ही सकता है। पंचायतोंकी हालत आज दयाजनक है। अक्सर वे सुधार चाहती हैं, पर करते डरती हैं। हिम्मतवाले शख़्स पहल करके सुधार चाहनेवाली पंचायतोंको बल पहुँचाते हैं और सुधारका दरवाज़ा खोलते हैं।

ता० ११–५–'२४

१४

मौसर या कारज

अेक भाअी अपने पर आया हुआ धर्मसंकट बयान करते हैं। अुनकी माँके मरने पर जातिवाले अुनसे मौसर करनेका हठ कर रहे हैं। अुनका .खुद अिसमें विश्वास नहीं। वे मानते हैं कि अैसे भोजोंसे नुक़सान होता है। दूसरी तरफ़, मौसर या कारज न करे तो जातिवालोंका जी दुखे। अैसे संकटके वक़्त क्या किया जाय, यह सवाल है।

समाजमेंसे पुरानी बुराअियाँ निकालनी हों, तो पहल करनेवालेपर अैसे धर्म संकट आया ही करते हैं। विनय और दृढ़ता ये दो शर्तें अुस वक़्त काम आती हैं। विरोधियोंका विरोध विनयके साथ सहना और अपना निश्चय मज़बूतीसे क़ायम रखना चाहिये। जातिवालोंको .खुश करनेके लिअे भी हमें अधर्म न करना चाहिये। मरनेके बाद दान करनेका रिवाज सभी जगह जान पड़ता है। दान करनेके अिरादेसे न हो तो भी अिसलिअे कि हमें कोअी कंजूस न समझे या जातिकी रायके लिअे हमारी लापरवाही न दीखे, हम जाति-भोजमें शक्तिभर या अुससे भी ज़्यादा जो खर्च करते हैं वह जातिके बच्चोंकी शिक्षामें ही लगायें तो पूरा फ़ायदा हो। झूठे घमण्डसे या डरसे हम जो रुपया शादी गमीके मौक़ों पर लगाते हैं, वह सब या अुसका बड़ा हिस्सा बचाना सीखें, तो सदा रुपयेकी तंगीका जो सवाल सामने रहता है, वह न रहे। पर अीश्वर जाने यह कैसी माया है कि ज्ञानी भी अैसे मौक़ों पर पामर बनकर, ज्ञान भूलकर और क़र्ज़ करके मौसर करते जा रहे हैं। पर अिस खादीकी सादगीके ज़मानेमें अैसे खर्चोंसे हम सब बच सकते हैं।

ता० २९–६–'२४

१५

रोना पीटना

अिस छोटेसे कमरेमें मैंने जिस धीरज और अीश्वरभावका तजरबा किया, अुसके साथ हमारे रोने पीटनेके रिवाजका मुक़ाबिला किये बिना मुझसे नहीं रहा गया। मैंने बहुतेरी हिन्दू मौतें देखी हैं। बीमारके शरीरमें अभी तो जान बाकी है, तो भी अुसके लिअे रामनामका जप होनेके बजाय रोनाचिल्लाना शुरू होते मैंने कअी बार देखा है। मौतके बाद रोने पीटनेकी सभी धर्मोंमें मनाही है। हिन्दू धर्म तो मानता है कि जन्म और मृत्यु अेक ही हालतकी दो शक्लें हैं। अितना होते हुअे भी रोने पीटनेका जंगली और नास्तिक रिवाज मैंने हिन्दुओंके सिवा दूसरे किसी धर्ममें नहीं देखा। मैंने पारसी, यहूदी, अीसाअी और मुसलमान मौतोंके वक़्त हाज़िरी दी है, लेकिन रोना पीटना मैंने कहीं नहीं देखा। मैं चाहता हूँ कि हिन्दू कुटुम्ब रोने पीटनेके घातकी, जंगली और बेकार रिवाजको अधर्म जानकर तुरन्त बन्द कर दें।

१६

रोटीबेटी

जाति भोज रोकनेसे भी शायद ज्यादा ज़रूरी सवाल जातियोंमें आपसमें रोटीबेटी व्यवहारको अुत्तेजन देनेका है। वर्णाश्रम जरूरी है, पर कअी अुपवर्ण हानिकारक हैं। जहाँ रोटी व्यवहार है, वहाँ बेटी व्यवहार होना चाहिये। अिस बारेमें दो मत नहीं, अैसा कह सकते हैं। यह भी देखा जाता है कि अैसी शादियाँ खासी तादादमें हुअी हैं। यह सुधार अैसा है कि अब रोका नहीं जा सकता। अिसलिअे यह बहुत ज़रूरी है कि सयाने पंच अैसे सुधारको अुत्तेजन दें। जितना अंकुश समयको पसन्द हो अुससे ज्यादा अगर पंच लोग रखेंगे, तो अुनकी बात जा सकती है। सुधारकोंकी शोभा अिसमें है कि अैसा

सुधार पंचोंके अूपर होकर भी करना पड़े तो अुसमें वे विनय रखें। अैसे सुधारक भी देखे गये हैं जो पंचोंको तुच्छ मानकर अुन्हें ललकारते हैं कि आपसे जो हो सो कर लेना। अैसी अुद्धतता करनेसे सुधारमें बाधा पड़ती है; और जहाँ पंचायत बिलकुल कमज़ोर हो गअी हो और अुसके लिअे सज़ा देना नामुमकिन हो गया हो, वहाँ सुधारक सुधारक न रह कर मनमानी करनेवाला बन जाता है। मनमानी सुधार नहीं। अुससे समाज अुठता नहीं, गिरता है।

ता० ११-५-'२४

१७

राष्ट्रीय छात्रालयोंमें पंक्ति भेद

काकासाहब कालेलकरकी बढ़ती हुअी डाकमें कअी तरहके सवाल आते हैं। अुनमें अेक खत पंक्ति-भेदके बारेमें था। अुसका जो जवाब अुन्होंने दिया है, अुसकी नक़ल अुन्होंने मेरे पास भेज दी है। अुनके विचार राष्ट्रीय छात्रालयोंको रास्ता दिखानेवाले हैं, अिसलिअे ज्यों के त्यों नीचे देता हूँ:

"यह पूछकर आपने ठीक किया कि विद्यापीठके छात्रालयमें खानेको अलग अलग पंगतोंमें बैठाया जाता है या नहीं। आप जानते हैं कि विद्यापीठके मक़सदमें नीचेका कलम है: 'विद्यापीठके मातहत संस्थाओंमें सभी चालू धर्मोंके लिअे पूरा आदर होगा और विद्यार्थियोंकी आत्माके विकासके लिअे धर्मका ज्ञान अहिंसा और सत्यको ध्यानमें रखकर दिया जायेगा'।

"आप यह भी जानते हैं कि विद्यापीठ अछूतपनको कलंक और पाप मानता है। विद्यापीठमें स्वराज्यकी असहयोगी शिक्षा पानेकी अिच्छावाले और खादीको माननेवाले किसी भी धर्मके विद्यार्थी आ सकते हैं। यह नियम नहीं है कि छात्रालयमें किसी खास वर्गके या पंथके ही विद्यार्थी आ सकते हैं। आम लोगोंमें जो आचार धर्म आज खुले तौरपर पाला जाता है, अुसका विरोध करना विद्यापीठका मक़सद नहीं। अिसलिअे छात्रालयमें ब्राह्मण रसोअियेके हाथसे ही रसोअी होती है। शौचाचार या मर्यादाओंके धर्ममें रसोअी अेक खास तरीक़े पर ही तैयार होनेका जो आग्रह रखा जाता है, वह

अिस तरह निभाया जाता है। मगर अलग अलग पंगत रखना शौचाचारका सवाल नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठाका सवाल है, अूँचनीचके शास्त्रका सवाल है। मैं अिस बातका ज़रूर विचार करूंगा कि खाते वक्त मुझे किस तरहका भोजन मिलता है और अुसके बनानेमें किस तरहकी सफ़ाअी रखी जाती है। मगर मैं अिसका ज्यादा विचार नहीं करूँगा कि अिसी तरहकी खुराक मेरे पास बैठकर खानेवालेके धार्मिक विचार कैसे हैं या अुसके आचार कैसे है, क्योंकि मैं अिज्जतके घमण्डको नहीं मानता। अिज्ज़तके घमण्डमें धर्मका तत्त्व नहीं है। अमेरिकामें गोरेकी पंगतमें कोअी हब्शी बैठे, तो गोरेको अैसा लगेगा कि अुसका दरजा घट गया है। गिरे हुअे राष्ट्रके हम लोग आपसमें अूँचनीचका घमण्ड रखकर अैसा ही भेद पैदा करते हैं, यह करुणाजनक दृश्य न होता तो हास्यरसका अजीब नमूना ही माना जाता।

"पंक्ति भेदके बारेमें छात्रालयमें कोअी खास नियम नहीं। विद्यार्थी अपने आप अेक साथ बैठते हैं। अध्यापक तो कोअी भी पंगतमें फ़र्क करना ठीक नहीं समझते। अिसलिअे विद्यार्थी भी अपने आप अुसी तरह करते हैं। दो तीन विद्यार्थी अपने माँबापके हठके कारण रसोअीमें जहाँ रसोअिये खाते हैं वहीं बैठकर खाते हैं। मगर अिस रिवाजको विद्यापीठकी तरफसे अुत्तेजन नहीं मिल सकता। खुराककी सफाअी पर आज जितना ध्यान दिया जाता है, अुससे भी ज्यादा दिया जा सकता है। पर पंक्तिभेद विद्यापीठके लिअे अच्छा नहीं, क्योंकि विद्यापीठ मानता है कि यह भेद घमण्डसे पैदा हुअी झूठी अिज्जत पर खड़ा हुआ है। धर्मका शुद्ध वातावरण कायम रखनेकी विद्यापीठ हमेशा कोशिश करेगा।"

काकासाहब फूँक फूँक कर क़दम रखना चाहते हैं, चूँकि वे माँबापका या विद्यार्थियोंका जहाँतक हो सके जी नहीं दुखाना चाहते। अिसलिअे कहते हैं कि: "छात्रालयमें ब्राह्मण रसोअियेके हाथसे ही रसोअी होती है। शौचाचार के धर्ममें रसोअी अेक खास तरीक़ेपर ही तैयार होनेका जो आग्रह रखा जाता है, वह अिस तरह निभाया जाता है।" मेरी राय तो यह है कि ब्राह्मण रसोअियेका आग्रह बहुत समय तक रखना नामुमकिन है। अैसी तो कोअी बात नहीं कि जिस अर्थमें यहाँ ब्राह्मण शब्द काममें लिया गया है अुन ब्राह्मणोंसे ही शौचाचारका पालन होता है। यह भी नहीं कि अैसे ब्राह्मणोंसे शौचाचारका पालन होता ही है। गंदगीसे भरपूर, तंदुरुस्तीके

नियमोंको तोड़नेवाले ब्राह्मण रसोअिये मैंने तो कितने ही देखे हैं; दो आँखोंवाले किस अिन्सानने नहीं देखे होंगे? शौचाचारमें होशियार, तंदुरुस्तीके क़ायदे जाननेवाले और पालनेवाले अब्राह्मण रसोअिये भी मैंने बहुत देखे हैं। अिसलिअे अगर ब्राह्मण शब्दके असली मतलबको ध्यानमें रखकर जो शौचाचारको पाले वही ब्राह्मण माना जाय, तो सब राष्ट्रीय छात्रालय आसानीसे काकासाहबका नियम पाल सकेंगे। जो जन्मसे ब्राह्मण है अुसीको ब्राह्मण माना जायगा, तब तो शौचाचारको पालनेवाले ब्राह्मण रसोअिये बहुत नहीं मिलेंगे; और जो मिलेंगे वे अितने महँगे मिलेंगे और अितने सिर चढ़ेंगे कि अुन्हें रखना और निभाना लगभग असम्भव हो जायगा।

विद्यापीठ सत्य और अहिंसाकी आराधना करता है। अिसलिअे हमारे छात्रालयोंमें जैसी हालत हो अुसे वैसी ही ज़ाहिर करनी चाहिये, अन्दर या बाहर आँखोंके आड़े कान नहीं किये जा सकते। अिसीलिअे काकासाहबने साफ़ कर दिया है कि विद्यापीठके छात्रालयमें पंक्तिभेदके लिअे जगह नहीं। पंक्तिभेदके गर्भमें ही अूँचनीचका भेद है। वर्णभेदके साथ अूँचनीचका कोअी ताल्लुक नहीं। अूँचेपनका दावा करनेवाला ब्राह्मण नीचे जाता है और नीच बनता है। अपनेको नीच माननेवाले और नीचे रहनेवालेको दुनिया अूँची जगह देती है। जहाँ मोक्ष आदर्श है, जहाँ अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है, जहाँ आत्मा आत्मामें कोअी फ़र्क़ नहीं, वहाँ अूँचेपन और नीचेपनकी गुंजायश ही कहाँ? अिसलिअे राष्ट्रीय छात्रालयोंके बारेमें मेरी रायसे तो अितना ही कहा जा सकता है कि वहाँ शौचाचारके क़ायदे पूरी तरह पालनेकी कोशिश होगी, यानी ब्राह्मणका सच्चा धर्म अुनका आदर्श रहेगा; आडंबरसे भरा और नामका ब्राह्मणधर्म पालनेका आदर्श नहीं हो सकता, क्योंकि वह बुराअी है और अिसलिअे छोड़नेकी चीज़ है।

ता० ९-९-'२८

१८

नयी विधियाँ

देशबन्धुके अन्तकालके सिलसिलेमें जो सभाअें वगैरा हुअी थीं, अुनमें बहुत जगह लोगोंने मामूली क्रियाओंके अलावा अपने माफिक होनेवाली कुछ नयी बातें भी की थीं। बंगालमें बहुत जगह कीर्तन हुअे थे। कहीं गरीबोंको खिलाया गया था और कहीं कहीं लोगोंने स्नान वगैरा करके धार्मिक क्रियायें की थीं। काठियावाड़में चाड़िया गाँवमें वह दिन अिस तरह मनाया गया था :

१. प्रभुसे अैसी प्रार्थना की गयी कि परमात्मा स्वर्गवासीकी आत्माको शान्ति दे और हिन्दुस्तानको दूसरे देशबंधु मिलें।

२. कुत्तों और गायोंको लड्डू खिलाये गये।

३. अुस दिन चड़स और हल न जोते गये।

४. हर किसानने अगले सालके लिअे घरकी जरूरतका अच्छा कपास जमा कर लिया।

और कअी जगह अुपवास किया गया और सूत काता गया था। अैसी नयी चीजें स्वागतके काबिल हैं। जो जो शुभ काम हमें सूझें और मरनेवालेको पसन्द हों, अुन्हें अैसी तिथियोंके बहाने आगे बढ़ाना मरनेवालेके लिअे हमारे प्रेमकी अच्छी निशानी है।

चड़स और हल न जोतनेमें जीवदया है। चौमासेके सिवा हम लगभग लगातार बिना विचारे चड़स वगैरा चलाते हैं। असलमें अैसा करनेसे लाभके बजाय हानि ही होती है। जहाँ हर हफ्ते आराम लेनेका और नौकरों व जानवरोंको आराम देनेका रिवाज है, वहाँ लोग कुछ खोते नहीं, पाते ही हैं। अिसलिअे बड़े आदमियोंके मरने जैसे मौकोंपर चड़स वगैरा बन्द रखकर नौकर, जानवर वगैराको आराम देना अच्छी शुरूआत है।

लेकिन कुत्तों और गायोंको लड्डू खिलानेमें झूठी दया है। यह माननेकी कोअी वजह नहीं कि हमें लड्डू अच्छे लगते हैं, अिसलिअे गायको

या कुत्तेको भी अच्छे लगेंगे या फायदा करेंगे। जानवरोंके स्वाद बिगड़े हुअे नहीं होते। जब मनुष्योंके स्वादमें फर्क है, तो जानवरोंका तो कहना ही क्या! अंग्रेजको लड्डू दें तो वह फेंक देगा। हममेंसे बहुतोंको अुनकी मिठाअी पसन्द न आयेगी। मद्रासमें कोअी रोटी खिलाये, तो मद्रासके लोग अुसे नहीं खा सकते। पंजाबमें चावलका भोज बेकार जायगा। तो फिर गायको और कुत्तेको लड्डू खिलानेका क्या मतलब? लड्डू खिलानेके ठीक होनेका यह सबूत नहीं कि गाय और कुत्ते लड्डू खा लेते हैं। दुबले ढोरोंको घास देना दया है। मगर गाँवोंमें तो दुबले ढोर होने ही न चाहियें।

कुत्तोंको खानेके लिअे देना दया नहीं; अिसमें तो मुझे अज्ञान ही दिखाअी देता है। हम नींद बेचकर अुजागरा मोल लेते हैं। कुत्तोंको गलत तरीकेपर ललचाकर हम अुनकी औलाद बढ़ाते हैं और फिर अुन्हें लावारिस रखकर दुबले बनाते हैं। कुत्ते तो सब पाले हुअे ही होने चाहियें। आवारा कुत्तोंकी हस्ती हमारे पापकी या अज्ञानकी निशानी है। अहमदाबाद अपने लावारिस कुत्तोंको अेक जगहसे दूसरी जगह धकेलकर दयाधर्म पालनेका दावा करता है। दयाधर्मका जरा भी विचार करनेसे मालूम पड़ेगा कि नामकी दया करनेमें दोहरी हिंसा होती है। अेक तो कुत्तोंको अपने वातावरणमेंसे निकालनेकी हिंसा और दूसरी अैसे कुत्तोंको पकड़कर गरीब गाँवोंके पास छोड़ देनेसे गाँव वालोंके साथ की जानेवाली हिंसा। आवारा कुत्तोंकी तकलीफका अिलाज समझदार आदमियोंको धार्मिक न्यायकी वृत्तिसे विचार कर ढूँढ़ना चाहिये। अैसे काम तभी हो सकते हैं जब पंचलोग दयाधर्मका बारीकीसे अध्ययन करें। और अैसा न करेंगे तो वह समय आ रहा है जब धर्महीन हाकिम जल्दबाजीमें कुत्तोंको मरवा देंगे। तुरन्तका अिलाज तो कुत्तोंके जाननेवाले शास्त्रीकी देखरेखमें अुनका अलग पींजरापोल खोलना ही मालूम देता है।

मामूली बात परसे मैं गहरा चला गया हूँ। लेकिन कुत्तोंको लड्डू खिलानेका प्रस्ताव पढ़कर साबरमती आश्रम पर हुअी आवारा कुत्तोंकी चढ़ाअीके अनुभव मेरी आँखोंके सामने आ खड़े हुअे; और अुसपरसे जीवदयाके बारेमें कुछ विचार मैंने पंचोंकी जानकारीके लिअे पेश किये हैं।

मगर हमारे यहाँ तो जैसे दुबले और आवारा जानवर हैं, वैसे ही दुबले और आवारा अिन्सान भी हैं। अुन्हें दुबले रखकर जिलानेमें पुण्य मानकर हम पापका ढेर लगा रहे हैं।

पिछले सप्ताह मैं सुरी गया था। मैं ग़रीबोंका दास माना जाता हूँ। अिसलिअे सुरीके महाजनोंने मेरे कारण कँगलोंका खिलाया था। अुन्होंने खानेका वक़्त मेरी गाड़ी पहुँचनेके समय ही रखा था। रास्तेके दोनों तरफ़ खाने बैठे हुअे ग़रीबोंकी अिस कतारके बीचसे मुझे मोटरमें बैठाकर ले जाया गया। मैं शरमाया; गुस्ताख़ीका डर न होता तो मैं वहीं अुतर पड़ता और भाग जाता। खानेवाले ग़रीबोंके बीच मोटरमें बिराजनेवाला यह अुनका अुद्दत दास खूब रहा! अिस बारेमें मैंने अपने दिलका कुछ रोना सुरीकी सभामें भी रोया।

अैसा ही अेक दृश्य मैंने कलकत्तेमें अेक पुराने धनी कुटुम्बके यहाँ देखा। वहाँ मुझे देशबन्धुकी यादगारके लिअे चंदा अिकट्ठा करने ले जाया गया था। अिस घरानेका महल 'मार्बल पैलेस'के नामसे पहचाना जाता है। वह बना भी है सिर्फ़ संगमर्मरका। मकान शानदार और देखने लायक है। अिस महलके आँगनमें सदा गरीबोंके लिअे सदाव्रत बँटता रहता है। वहाँ ग़रीबोंको पकाया हुआ अन्न खिलाया जाता है। दानकी यह अुदारता मुझे दिखानेके निर्दोष अिरादेसे और मुझे आनन्द देनेके अच्छे मक़सदसे मालिकोंने मुझे ठीक अुन लोगोंके खानेके वक़्त बुलाया था। मैंने बिना विचारे 'हाँ' कह दिया। मगर वहाँका दृश्य देखकर मैं सुरीसे भी ज्यादा दुखी हुआ और घबराया। खानेवालोंके बीचसे मुझे मोटरमें बैठाकर तो नहीं ले गये, मगर मेरे पीछे जहाँ देखूँ वहीं लोगोंकी भीड़ तो थी ही। यह सारी भीड़ अिन खानेवाले कँगालोंके बीच होकर निकली। बेचारे खानेवालोंसे अिन लोगोंके पैर तो छूते ही थे। घड़ीभर तो अिन बेचारोंका खाना भी बंद रहा। अुनकी आत्माने मुझे दुआ दी हो तो धन्य है अुनकी समता और अुदारता! कहाँ धूल भरा आँगन और कहाँ बरफ़ जैसा अुजला और अूँचा महल! मुझे तो अैसा लगा कि कहीं यह महल अुन ग़रीबोंकी हँसी तो नहीं अुड़ा रहा

है ! और मेरे अन्तर को अैसा जान पड़ा कि अुन ग़रीबोंके बीचमें होकर लापरवाहीसे चलनेवाले अुनके कृपालु भी अुस हँसीमें शरीक हैं !

क्या अिस तरह लोगोंको खिलानेमें पुण्य हो सकता है? शुद्धसे शुद्ध भाव होने पर भी मुझे तो अिसमें विचार और ज्ञानके न होनेसे पाप ही होता दिखा। अैसे सदाव्रत देशमें जगह जगह पर हैं। अिससे कंगाली, आलस्य, पाखंड और चोरी वग़ैरा बढ़ती है; क्योंकि बिना मेहनतके खानेको मिले तो मेहनत न करनेकी आदतवाले लोग आलसी बनते हैं और फिर कंगाल बनते हैं। 'खाली बैठा नास जाय' वाली कहावतके अनुसार अैसे कँगले चोरी वग़ैरा सीखते हैं। दूसरी बुराअियाँ वे अपने साथ करें सो अलग। अिन सदाव्रतोंका अन्त मुझे तो खराब ही दीखता है। धनवानोंको यह सोचना ही चाहिये कि अुनके दानके पात्र कैसे हैं। यह बात तो है ही नहीं कि हर धर्मादेमें पुण्य है। लूले-लंगड़े या बीमारीसे दुःखी मनुष्योंके लिअे ज़रूर सदाव्रतकी ज़रूरत है। अुन्हें खिलानेमें भी विवेक होना चाहिये। हज़ारोंके देखते हुअे कमजोरोंको भी नहीं खिला सकते। अुन्हें खिलानेके लिअे अेकांत, शांत और सुघड़ जगह होनी चाहिये। सच तो यह है कि अैसोंके लिअे खास आश्रम होने चाहियें। अैसे आश्रम छुटपुट तो हिन्दुस्तानमें हैं। ग़रीबको खिलानेकी अिच्छा रखनेवाले दानी गृहस्थोंको चाहिये कि वे या तो अिस तरहके अच्छे आश्रमोंमें रुपया भेजें, और जहाँ न हों वहाँ ज़रूरतके मुताबिक अिस तरहके आश्रम खोलें।

कमजोर ग़रीबोंके लिअे कोअी भी धन्धा ढूँढ़ना चाहिये। लाखोंकी भलाअी हो सके, अैसा साधन सिर्फ़ चरखा है।

ता० २-८-'२५

१९

धर्मके नाम पर अधर्म

मथुरासे अेक गृहस्थ लिखते हैं :

"मथुराके पास और गोवर्धनके बहुत नज़दीक जतिपुरा गाँवमें अगले महीने छप्पनभोगका मेला होगा। वैष्णव संप्रदायके गुसाअीं लोग अिनका बन्दोबस्त करेंगे। सुना है कि अन्दाजन् दो तीन लाख रुपये अिस काममें खर्च होंगे। गुजरातके वैष्णव, जिनमें खासकर बम्बअीके व्यापारी भाटिये लोग हैं और जिनके यहाँ धर्मादेकी रक़म जमा रहती है अुनका वह रुपया अिस मेलेमें लगाया जायगा। अिस छप्पनभोगके मौकेपर १०० या अिससे ज्यादा ब्राह्मण श्रीमद्भागवतका अेक साथ पारायण करेंगे और तरह तरहके भोग, मिठाअियाँ वगैरा चीजें बनेंगी। रथयात्राका भी यही समय होगा। हज़ारोंकी तादादमें गुजराती लोग अिस अुत्सवमें शरीक होंगे। धर्मके लिअे अिस दिखावेको क्या आप ठीक समझते हैं?

"यह ब्रजभूमि श्रीकृष्ण महाराजको लीलाओंकी जगह है। श्रीकृष्ण महाराजकी गायमें कितनी भक्ति थी, यह किसीसे छिपा नहीं है। अिसलिअे गायकी भक्ति ही अिस वक्त सच्ची कृष्णपूजा है। गायकी सन्तानका अिस ब्रजभूमिमें आज जितना दर्दनाक दृश्य है, अुसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

"मथुरा वृन्दावनमें सावन भादोंमें बहुत ज्यादा मेले लगते हैं। लाखों भाअी आते हैं। बाजारमें अच्छा घी दूध देखनेमें नहीं आता। वनस्पति घी और सड़े-गले घीके पकवान और मिठाअी सभी जगह बिकती है। और विलायती खाँड भी खूब ही काममें ली जाती है। अब तो लकड़ीका बना हुआ आटा भी काममें लाया जाने लगा है। अिस सामानसे तीर्थकी जगहमें पोषण पाकर ये श्रद्धालु यात्री अिस तरह अपनी तीर्थयात्रा सफल करनेमें अपनी ख़ुशक़िस्मती समझते हैं, और अैसी भगवद्भक्तिका परिचय देते नहीं लजाते।"

यह हिन्दी समझनेमें सहल है, अिसलिअे मैंने तर्जुमा नहीं किया। अुत्तर हिन्दुस्तानमें रहनेवाले शास्त्रको जाननेवाले ब्राह्मण भी गुजरातके श्रद्धालु, मगर अुलटे रास्ते चलनेवाले वैष्णवोंके बारेमें क्या खयाल करते हैं, यह अुन्हींके शब्दोंमें बतानेकी खातिर मैंने अूपरका कागज़ लिखनेवालेकी

भाषामें ही दिया है। मिठाअियाँ खाने खिलानेमें हजारों रुपया खर्च करना और अुस कामको धर्मके तौरपर ज़ाहिर करना तो अिस जमानेकी बलिहारी ही समझना चाहिये। जहाँ वैष्णवधर्ममें दूसरेके दुःखको देखना मध्यबिन्दु है, वहाँ भावुक माने जानेवाले वैष्णवोंने अुसे भोग भोगनेका ज़रिया बना डाला है। जैसे अिस देशमें और जगह होता है, वैसे गोवर्धनमें गायकी औलादकी तबाही होती जा रही है। दूध घीकी कमीकी जो बात अिस पत्रमें लिखी है, अुसका अनुभव सभी यात्रियोंको हुआ है। गुजरातके धनी वैष्णव अिस खतपर ध्यान दें, चेतें और धर्मके नामपर होनेवाले अधर्मसे बचें।

ता० २९-८-'२८

२०

तपका अुत्सव

अेक दोस्त लिखते हैं :

"भगवान ऋषभदेवजीको बारह महीने तक खानेका मौक़ा नहीं मिला था और वैशाख सुदी तीजके दिन अपने घर जाते हुअे अुनके पोतेने दादाको देखकर ख़ुशीके मारे मिसरीका तैयार रस पिला दिया था। अिस कारणसे जैनोंमें बारह महीने तक अेकांतरे खानेका तप करते हैं, और अुपवास देरसे शुरू किये हों तो भी वैशाख सुदी तीजका अुत्सव करते हैं। अिस मौक़ेको शादीका सा बनाकर न्यौता भेजते हैं, बर्तन और शकर बाँटते हैं, खाना खिलाते हैं, गीत गाते हैं और शादीके टीकेकी तरह टीका लगाते हैं। मेरी छोटी रायमें अैसी रूढ़िका गुलाम बननेसे आत्मा अूँची अुठनेके बजाय नीचे गिरती है, और कुछ घमण्ड पैदा होता है। अिसलिअे जब मेरी स्त्रीने बरसी तप शुरू किया, तब मित्रोंके सामने मैंने कह दिया कि रूढ़िको मानकर मैं कुछ नहीं करूँगा, लड़कियोंको भी नहीं बुलाअूँगा। और मेरी शक्तिके अनुसार अच्छे काममें जो कुछ लगाना होगा, गांधीजीके पास भेज दूँगा। मेरी घरवालीने यह विचार पसंद किया, और अुसीके मुताबिक अिस पत्रके साथ २०१) रु० की हुंडी भेजी है। अिसे भील सेवा मण्डलमें, अछूतोंके चंदेमें, गोशालाके काममें

या जहाँ कहीं आपको ठीक लगे वहीं लगा दीजिये। लोक लाजके मारे मुझे भोज देना पड़ता तो ज्यादा खर्च होता।"

अितनी हिम्मत दिखाने और खराब रूढ़िको तोड़नेके लिअे मैं अिस मित्रको बधाअी देता हूँ। अिस मिसालकी नक़ल दूसरे जैनी, वैष्णव वग़ैरा करें, तो देशमें होनेवाले लोकसेवाके कामोंको मदद मिले और धर्मके नाम पर जो भोग भोगे जाते हैं, वे कुछ कम हों।

हमारा मन भोगोंमें अितना ज्यादा फँसा रहता है कि हम शुद्धसे शुद्ध चीज़को भी भोगका बहाना बना लेते हैं। अुपवास वग़ैराका आध्यात्मिक या रूहानी फल छोड़कर हम अुसके ज़रिये बड़प्पन कमानेमें लग जाते हैं और अुसे बादमें कअी तरहके मज़े अुड़ानेका साधन बना डालते हैं।

असलमें तो जो लोग तप वग़ैरा करते हैं, अुनका धर्म है कि अुसकी डोंडी न पीटें पिटवावें और अुसके लिअे घमण्ड न करें। सगे सम्बन्धी अैसे तपका अच्छा अुपयोग करना चाहें, तो अुसके सिलसिलेमें छिपे तौरपर तटस्थ भावसे अुपयोगी दान करें।

अिस मित्रके खतमें अेक दूसरी बातका भी ज़िक्र है। अनाथालय, बालआश्रम वग़ैरा संस्थाअें अैसे वक्तपर मिठाअी खानेके लिअे दानकी आशा रखती हैं। यह अफसोसनाक रिवाज है। अनाथोंको आश्रम कायम करके सनाथ बनाना चाहिये। और अुन्हें सनाथ बनाना हो तो भीखमें मिला खाना अुन्हें कभी न खिलाना चाहिये। अनाथालय चलानेके लिअे अच्छा दान लाना अेक बात है; अुनमें रहनेवाले अनाथोंको दानी लोग अपनी मरजीका खाना खिलायें, यह दूसरी बात है। अेकमें संस्थाको चलानेकी मंशा है, दूसरीसे अनाथोंका अपमान या बेअिज्जती होती है। फिर, अिस तरह भोजन मंजूर करनेवाली संस्था अुसमें रहनेवालोंकी तंदुरुस्तीको जोखममें डालती है और अुन्हें चटोरे बनाकर अुनकी जिन्दगी बिगाड़ती है। अिसलिअे अगर अिस तरहकी संस्थाअें भोजनके बजाय दान ही लेनेका आग्रह रखें और दानी लोग भोजनके रूपमें दान न देनेका आग्रह रखें, तो वे प्रजाकी भलाअीके भागीदार बनेंगे।

ता० १३–५–'२८

२१

स्मशानका सुधार

भाअी छोटालाल तेजपालने हमें दोचार पत्र लिखे हैं और अुन्होंने जो हलचल चला रखी है अुसके बारेमें कुछ साहित्य भी भेजा है। यह सब अितना लम्बा है और आसपासकी दूसरी हकीकतोंसे अितना भरा है कि हम अुसे छाप नहीं सकते। अिसलिअे हम सिर्फ अुनका मतलब ही देनेका विचार रखते हैं, क्योंकि यह मतलब हमें अुपयोगी जान पड़ा है।

मुर्दोंका बन्दोबस्त करनेकी तकलीफ दिन दिन बढ़ती जाती है। गरीबोंकी अड़चन ज्यादा है। कुछ लोगोंका तो मुर्दे अुठाने तककी सहूलियत नहीं मिलती। देशमें महामारी वगैराका बखेड़ा समय समयपर होता रहता है और अुस वक्त लोगोंकी हालत बड़ी दयाजनक हो जाती है। फिर जब तक मुर्दा जलता रहे तब तक बैठे रहनेमें वक्त फजूल बर्बाद होता है। कअी बार चिता अिस तरह बनाअी जाती है कि मुर्दा पूरा ढँकता भी नहीं।

अिन कारणोंसे कुछ अर्सेसे मुर्दा ले जाने और जलानेकी क्रियामें सुधार करनेकी कोशिश भाअी छोटालाल कर रहे हैं। हमें लगता है कि यह कोशिश अुत्तेजनके लायक है। अिनका सुझाव अैसा है कि मुर्देको सवारीमें ले जायँ। स्मशान अैसे शास्त्रीय तरीकेसे तैयार किया जाय कि मुर्दा अेक भट्टीमें डाला जाय और तेज आगसे अुसकी फौरन् राख हो जाय। अैसा करनेसे रुपया और वक्त बच जाता है और धर्मकी भावनाको जरा भी चोट नहीं पहुँचती। फिर भी फिलहाल सवारीमें मुर्दा ले जाने और शास्त्रीय ढंगसे जलानेकी बात तुरन्त लाजमी न करके लोगोंकी मरजीपर छोड़ना ज्यादा ठीक समझा जायगा। अैसे मामलेमें लोकमतको तैयार करनेकी जरूरत है। खराब रिवाज भी धीरे धीरे ही दूर किये जा सकते हैं। लोग समझकर या श्रद्धासे खुशीके साथ जो फेरबदल मंजूर करेंगे, वही सच्चा सुधार माना जायगा। अिस तरह जहाँ जहाँ कुछ हिम्मतवाले गृहस्थ हों, रुपयेका सुभीता हो और थोड़े बहुत लोग जलानेके नये तरीकेको

माननेके लिअे तैयार हों, सवारी और जलानेकी सहूलियत हो और अिन्तजाम अच्छा रखा जाय, वहाँ थोड़े समयमें यह जरूरी चीज लोकप्रिय हो जायगी। और महामारीके वक्त गरीब लोग तो अिसका स्वागत ही करेंगे ।

ता० ५-१०-’१७

२२

महामारी और मौतगाड़ी

काठियावाड़का पिछला (अप्रैल १९२५का) सफर पूरा करके लौटते वक्त राजकोट बीचमें पड़ता था । स्टेशन पर आये हुअे भाअियोंसे मिलनेपर मालूम हुआ कि महामारीके कारण राजकोट लगभग खाली हो गया है । अभी मैं अिसका फैसला करनेमें नहीं पड़ूँगा कि अिस तरह डरके मारे अपनी जगह छोड़ देना ठीक है या सफाअीके नियम पालते हुअे और दूसरे अुचित अुपाय करते हुअे अपनी जगह पर डटे रहना ठीक है । मगर अितना तो कहा ही जा सकता है कि राजकोट जैसे शहरको महामारीसे बचाना आसान काम होना चाहिये ।

जिस खबरसे मुझे बहुत दुःख हुआ, वह तो यह थी कि महामारीसे मरे हुअे लोगोंकी क्रिया करनेमें भी कुछ लोग डरते हैं, और वह क्रिया सेवासमिति या रियासतको करनी पड़ती है । अिन्सानको मौतका कितना भी डर हो, तो भी वह अपनोंकी सेवा करनेके लिअे बँधा हुआ ही है; जो मरे अुसकी क्रिया करना अुसका धर्म है । अिस तरह अपना अपना मामूली फ़र्ज़ भी लोग पूरा न करें, तो समाजके बन्धन टूट फूट कर समाजका नाश ही हो जाय ।

अिस वक़्त भाअी छोटालाल तेजपालकी मौतगाड़ी याद आती है । भाअी छोटालाल तो अपनी गाड़ीके पीछे पागल हो गये हैं । जैसे मुझे चरखेमें ही सब कुछ दीखता है, वैसे अुन्हें मौतगाड़ीमें सब कुछ दीखता

है। पर हम अुनकी अतिशयोक्तिका या अुनके पागलपनका खयाल न करें। यही सोचें कि वे जो बात कहते हैं, अुसमें कहाँ तक सचाअी है। अुनकी दलील अैसी है कि मुर्दोंको कंधे पर रखकर ले जानेमें बड़ी तकलीफ़ होती है, अुसमें बहुत आदमी लगते हैं और बहुत ही ग़रीब आदमियोंके लिअे तो यह लगभग नामुमकिन ही है। असलिअे वे कहते हैं कि मुर्दोंको गाड़ीमें ले जाना ही ठीक है। असलिअे अुन्होंने राजकोटमें तो अेक गाड़ी भी बनाअी है और अुस गाड़ीको आम लोगोंके लिअे मुफ़्त देते हैं। अभी अिस सवालको अेक तरफ़ रखें कि हर मौक़े पर मुर्देको गाड़ीमें ही ले जायँ या नहीं। लेकिन जब अैसे महामारीके समय आदमियोंकी ख़ूब तंगी होती है और अुठानेवालोंको जोखम भी लेनी पड़ती है, तब गाड़ीको छूटसे काममें लेना समझदारीकी बात होगी। मुर्दा कंधे पर ही ले जानेकी बात कोअी शास्त्रकी नहीं है। यह सिर्फ़ रिवाजकी बात है। जहाँ स्मशान बहुत दूर है, जहाँ गरमी सख़्त पड़ती है और जहाँ अुठानेवाले थोड़े होते हैं, वहाँ गाड़ी तो मददगार होती है। भाअी छोटालालकी बनाअी हुअी गाड़ी आदमी खींच सकता है, अुसमें घोड़ा वग़ैरा रखनेकी ज़रूरत नहीं रहती। यह गाड़ी बग़ैर थके अेक या दो आदमी ले जा सकते हैं। मौक़े पर गाड़ीका अुपयोग करनेकी मैं सबको सलाह देता हूँ।

ता० १९–४–'२५

पूर्ति*

आश्रममें अुपजातियाँ नहीं मानी जातीं। अेक दूसरेके साथ खानेमें छुआछूत नहीं रखी जाती। अिसलिअे आश्रममें सभी अेक पंगतमें खाने बैठते हैं। अिस व्यवहारका प्रचार आश्रमके बाहर नहीं किया जाता। अछूतपन मिटानेके लिअे अिस प्रचारकी ज़रूरत नहीं मानी गयी। अछूतपन मिटानेका अर्थ यह है कि अछूतोंके सार्वजनिक संस्थाओंमें जानेपर जो रुकावटें लगाअी जाती हैं, अुन्हें दूर किया जाय; और अुन्हें छूनेपर जो छुआछूत मानी जाती है, अुसे मिटाया जाय। ये पाबन्दियाँ क़ानूनसे भी हटाअी जा सकती हैं। रोटीबेटीका व्यवहार अेक अलग सुधार है। अिसमें क़ानून या समाज दखल नहीं दे सकते। अिस खयालसे आश्रमवासी अपने लिअे सबके साथ खाद्य पदार्थ खानेकी स्वतंत्रता रखते हैं, मगर अैसा करनेका प्रचार नहीं करते।

आश्रमकी तरफसे अछूतोंके लिअे पाठशालाअें खोलने और कुअें खुदवानेकी कोशिश भी हो रही है। अिसमें आश्रमका खास काम रुपया जमा करना है। अछूतपनके बारेमें आश्रमकी सही प्रवृत्ति तो आश्रमवासीके अपने आचरणको सुधारनेकी है। आश्रममें अूँचनीचपनको कोअी भी स्थान नहीं है।

अितने पर भी आश्रम वर्णाश्रमको हिन्दू धर्मका अंग मानता है। मगर वर्णाश्रमका सच्चा अर्थ मामूली अर्थसे अलग तरहका है। चार वर्ण और चार आश्रम सिर्फ हिन्दू धर्मकी ही व्यवस्था हो, सो बात नहीं। यह चीज़ मनुष्यमात्रमें है। यह सार्वजनिक नियम है। अुसका भंग करनेसे दुनियामें कअी आपत्तियाँ पैदा हुअी हैं। जैसे वर्ण चार हैं, वैसे ही आश्रम भी चार हैं — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रमका अर्थ है, विद्याभ्यास काल। अिस समयमें विद्यार्थी — स्त्री या पुरुष — ब्रह्मचर्यका पालन करे, अितना ही काफ़ी नहीं, बल्कि अिस कालमें अुस पर विद्यासंपादनके सिवा दूसरा कोअी भार न होना चाहिये। यह अवस्था

---

* 'सत्याग्रह आश्रमके अितिहास' में वर्णाश्रम-धर्म, वर्ण-व्यवस्था और जातपाँतके बारेमें प्रकट किये गये गांधीजीके विचार। — प्रकाशक

कमसे कम २५ साल तककी मानी गयी है। अुसके बाद ब्रह्मचारीको गृहस्थ जीवनमें प्रवेश करना हो, तो करे। ९९·७५ फ़ी सैकड़ा लोग तो अुसमें प्रवेश करेंगे ही। मगर यह जीवन ५० वर्षकी अुम्रमें बन्द होना ही चाहिये। अिस कालमें गृहस्थ अपनी विषयतृप्ति करे, धन कमाये, धन्धा करे, सन्तान पैदा करे। बाक़ीके २५ साल पतिपत्नी अलग रहकर सिर्फ भलाअीके काम करें, जनताकी सेवा करें, और परिवारसे दूर रहकर सारे संसारको परिवार माननेकी कोशिश करें। आखिरी २५ बरस दोनों संन्यासमें बितायें। अिसमें खास व्यवसायके बजाय दोनों अलग अलग रहकर लोगोंमें धार्मिक जीवनका प्रचार करें, आदर्श जीवन बिताकर लोगोंको आदर्श सिखावें, और खुद सिर्फ प्रजाकी दयापर गुजर करें। यह साफ़ मालूम होता है कि अिस तरहसे बहुत लोग चलें, तो समाजकी ज़िन्दगी बहुत अूँचे दरजेकी हो जाय।

मगर अिस बारेमें अलग अलग राय हो सकती है कि आश्रमकी जो मर्यादा अूपर बताअी गयी है, वही आज भी होनी चाहिये या दूसरी। मुझे मालूम नहीं कि आश्रम-व्यवस्थाकी खोज हिन्दू धर्मके बाहर भी हुअी है। आज तो यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्ममें वह लगभग नष्ट हो गयी है। ब्रह्मचर्याश्रम-जैसी चीज तो कोअी है ही नहीं। और यह तो आश्रम-जीवनका आधार है। दूसरे आश्रमोंमें संन्यास आश्रम नामके लिअे जरूर पाया जाता है। परन्तु संन्यासियोंमें बहुतसे तो सिर्फ़ वेशधारी रह गये हैं, बहुतसे ज्ञानहीन हैं, और कुछ, जिन्होंने विद्या अच्छी प्राप्त की है, ब्रह्मज्ञानी तो नहीं, लेकिन धर्मान्ध हैं। अिनमें कहीं कहीं कोअी चरित्रवान संन्यासी भी ज़रूर देखनेमें आते हैं। मगर संन्यासीके तेजवाले मुश्किलसे नजर आते हैं। सम्भव है, अैसे लोग छिपे हुअे रहते हों। मगर यह साफ जाहिर है कि संन्यास आश्रमका भी लोप हो रहा है। जिस समाजमें प्रौढ़ संन्यासी विचरते हों, अुस समाजमें धर्म और अर्थकी कंगाली नहीं होती, वह पराधीन नहीं होता। आजका हिन्दू समाज धर्महीन, तेजहीन, अर्थहीन और पराधीन है। अिस बारेमें दूसरी राय मैंने नहीं सुनी। मेरी राय तो यहाँ तक है कि संन्यास आश्रम अगर जिन्दा होता, तो पासवाले दूसरे धर्मोंपर भी अिन

संन्यासियोंका असर पड़े बिना न रहता । संन्यासी हिन्दू धर्मका ही नहीं, सभी धर्मोंका है ।

मगर अैसे संन्यासी ब्रह्मचर्य आश्रमके बिना पैदा ही नहीं हो सकते । वानप्रस्थ तो नामको भी नहीं रहा । बाकी रहा गृहस्थ आश्रम । सो गृहस्थ जीवन आश्रमके रूपमें नहीं रहा । वह तो सिर्फ मनमानी करनेका साधन बना हुआ है । अुसमें मर्यादा नहीं रही । दूसरे आश्रमकी ढालके बिना गृहस्थ जीवन पशुजीवन है । अिस जीवनकी मर्यादा मनुष्य और पशुके बीचका अेक बड़ा फर्क है । वह न रहा तो मेरी रायमें यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गृहस्थ जीवनमें पशुजीवनके सिवा और कुछ नहीं रहेगा ।

अिस आश्रम जीवनका फिरसे अुद्धार करनेकी बड़ी भारी कोशिश आश्रममें जारी है । मुझे खुद यह प्रयत्न अैसा ही हास्यजनक लगता है, जैसे चींटा गुड़से भरे घड़ेको अुठानेकी कोशिश करे । मगर कितना ही हास्यजनक लगे, तो भी यह अेक सत्यनिष्ठासे प्रेरित प्रयत्न है । और अिसीलिअे आश्रममें सभीको ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है । आश्रमवासियोंको अुसे मरते दम तक पालना है । अिस दृष्टिसे आश्रममें रहनेवाले सभीको आश्रमवासी नहीं माना जाता । जिसने अुम्रभर ब्रह्मचर्यका पालन करनेका व्रत लिया है, वही आश्रमवासी माना जाता है । अैसे थोड़े ही हैं । बाकी सब आश्रम-विद्यार्थी माने जायँगे । अगर यह प्रयत्न सफल हो, तो शायद अुसमेंसे आश्रम-व्यवस्था पैदा हो जाय । मेरा खयाल है कि अिस प्रयत्नकी सफलताका अन्दाज़ा लगानेके लिअे आश्रमकी सोलह सालकी ज़िन्दगी काफी नहीं है । मैं नहीं जानता कि यह अन्दाज़ा कब लगाया जा सकेगा । सिर्फ अितना ही कह सकता हूँ कि सोलह वर्षकी कोशिशके बाद मुझे निराशा ज़रा भी नहीं है ।

जब आश्रम-व्यवस्था अिस तरह बिगड़ गयी है, तब वर्ण-व्यवस्थाकी हालत अिससे कुछ कम खराब नहीं है । मूलमें चार वर्ण थे । अब अनगिनत हैं अथवा अेक ही । यदि जातियोंके बराबर वर्ण मानें, तो जातियाँ अपार हैं । और यदि यह मानें कि जातियोंका वर्णसे कोअी सम्बन्ध ही नहीं है (मेरी रायसे यही मानना भी चाहिये), तो अेक ही वर्ण रहा है, और वह है शूद्र । यहाँ शूद्रका अर्थ दोषसूचक नहीं है,

लेकिन वस्तुस्थिति सूचक है। जो वर्ग नौकरी करता है, वह पराधीन है या शूद्र है। आज तो सारा हिन्दुस्तान पराधीन है, अिसलिअे वह शूद्र है। किसान अपनी जमीनका मालिक नहीं, व्यापारी अपने व्यापारका मालिक नहीं। शास्त्रोंमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंके जो गुण बतलाये गये हैं, वैसे गुणवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय भाग्यसे ही देखनेको मिलते हैं।

जब वर्ण-व्यवस्थाकी खोज हुअी थी, तब मेरे खयालमें अूँचनीचकी भावना नहीं थी। अिस संसारमें न कोअी अूँचा है, न नीचा। अिसलिअे जो अपनेको अूँचा मानता है, वह कभी अूँचा नहीं हो सकता। जो अपनेको नीच मानता है, वह सिर्फ़ अज्ञानके कारणसे। अुसे अुसके नीच होनेका पाठ अुससे अूँचापन भोगनेवालोंने सिखाया है। ब्राह्मणमें ज्ञान हो, तो ज्ञानहीन लोग अुसका आदर करेंगे ही। जो ब्राह्मण आदरसे अभिमानी बनेगा या अपनेको अूँचा मानेगा, वह अुसी वक़्तसे ब्राह्मण नहीं रहेगा। गुणकी पूजा सदा ही होगी। मगर गुणवान आदमीने अपनेको जहाँ अिस कारणसे अूँचा माना कि तुरन्त अुसके गुण निकम्मे हो जाते हैं। जिसमें कुछ भी गुण या शक्ति है, वह आदमी अुस गुण या शक्तिका रक्षक है और अुसे अुसका अुपयोग समाजके लिअे करना चाहिये। किसी भी व्यक्तिको अपने ही लिअे जीनेका हक़ नहीं। कोअी अपनी शक्ति अपने ही लिअे अिस्तेमाल नहीं कर सकता। सब अपनी शक्तिका अुपयोग समाजके लिअे पूरी तरह कर सकते हैं।

अिस कल्पनासे पहले वर्ण-व्यवस्था हुअी हो या न हुअी हो, आज तो कोअी भी अपनेको अूँचा कहलाकर जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। अुसका यह दावा समाज अपनी अिच्छासे नहीं मानेगा। यह हो सकता है कि वह ज़बरदस्तीसे सिर झुका ले। दुनियामें जो जाग्रति हुअी है, अुसमें स्वेच्छाचार भले ही बहुत आ गया हो, मगर लोकमत अूँचनीचका भेद सहनेको आज तैयार नहीं। दिनदिन अिस भेदका अिन्कार बढ़ता जा रहा है। यह ज्ञान फैलता जाता है कि आत्माके रूपमें सभी बराबर हैं। यह भाव भी अूँचनीचका भाव मिटाता है कि हम सब अेक ही अीश्वरके बनाये हुअे हैं। अिसका यह मतलब नहीं कि चूँकि यह भेद नहीं है या न होना चाहिये, अिसलिअे सबकी शक्ति भी आज बराबर

है या होनी चाहिये । अेक दूसरेकी शक्ति अेक-सी नहीं, सबकी जायदाद बराबर नहीं, सबको समान अवसर नहीं । फिर भी सब बराबर हैं, अिसीका नाम तो भ्रातृभाव है । भाअीबहन अलग प्रकृतिके, अलग शक्तिवाले, और अलग अुम्रके होते हुअे भी सब समान हैं । यही बात जीवमात्रके बारेमें है ।

अिस तरह अगर वर्ण-व्यवस्था परमार्थके लिअे हो, धार्मिक हो, तो अुसमें अूँचनीचपनकी गुंजायश ही नहीं रहती ।

अिस तरहके अेक दूसरेको समान समझनेवाले चार विभाग वर्ण-व्यवस्थामें हैं, और ये जन्मसे हैं । कर्मसे ये बदल भले ही जायँ, पर वर्ण-व्यवस्थाका आधार जन्म न हो, तो अैसा ही लगता है कि फिर अुसका कोअी अर्थ नहीं रह जाता है ।

वर्ण-व्यवस्थामें धर्म और अर्थका संग्रह है । अुसमें पिछले जन्मका और माँबापका असर मान लिया गया है । सभी अेक-सी शक्ति और अेक-सा रवैया लेकर नहीं पैदा होते । यह भी नहीं हो सकता कि बेशुमार बच्चोंकी शक्तिका माँबाप या हुकूमत अन्दाजा लगा सकें । लेकिन अगर यह खयाल रखकर बच्चेको अपने धन्धेके लिअे तैयार किया जाय कि बच्चेमें अुसके माँबापका, आसपासके वायुमण्डलका, और पिछले संस्कारोंका असर होगा ही, तो किसी किस्मकी परेशानी न हो । निरर्थक प्रयोगोंमें लगनेवाला वक्त बच जाय, नीतिनाशक होड़ न हो, समाजमें सन्तोष रहे और आजीविकाके लिअे कशमकश न हो ।

अिस व्यवस्थाके गर्भमें ही अूँचनीचपनका भेद अुठ जाता है । अगर मोचीसे बढ़अी बड़ा और बढ़अीसे वकील-डॉक्टर और भी बड़े माने जायँ, तो अपनी मरजीसे कोअी मोची या बढ़अी न रहे, बल्कि सब वकील-डॉक्टर बननेकी ही कोशिश करें । और अैसा करनेका अुन्हें अधिकार होना चाहिये और तारीफ़की बात समझी जानी चाहिये । यानी वर्ण-व्यवस्थाको बुराअी मानकर अुसके नाशकी अिच्छा और कोशिश करनी ठीक है ।

यह कहनेमें कि सब अपने अपने पैतृक धन्धेकी शिक्षा ग्रहण करें, यह खयाल भी आ जाता है या आना चाहिये कि सब धन्धोंका मूल्य

गुजरके लायक ही होना चाहिये । अगर मोचीसे बढ़अीकी मजदूरी ज्यादा हो और दोनोंसे वकील-डॉक्टरकी बहुत ही अधिक हो, तो फिर सभी वकील-डॉक्टर बननेकी कोशिश करेंगे । आज अैसा होता है । अुससे द्वेष बढ़ा है और वकील-डॉक्टरोंकी तादाद जितनी चाहिये अुससे ज्यादा हो गयी है । जैसे बढ़अी और मोची वगैराकी ज़रूरत है, वैसे समाजको वकील और डॉक्टरकी ज़रूरत भी हो सकती है । यहाँ ये चार धन्धे अुदाहरणके लिअे और अेक-दूसरेके साथ मुकाबला करनेके लिअे दिये गये हैं । यहाँ यह विचार करनेकी जगह नहीं है कि कौनसे धन्धोंकी समाजको ज्यादा ज़रूरत है या बिलकुल ज़रूरत नहीं है ।

लेकिन वर्ण-व्यवस्थाको माननेके साथ ही यह भी मान लेना चाहिये कि विद्वत्ता कोअी धन्धा नहीं है और रुपया जमा करनेके लिअे अुसका अुपयोग नहीं होना चाहिये । अिसलिअे वकील-डॉक्टरके कामको जिस हद तक पेशा माना जाय, अुस हद तक अुससे गुज़ारे लायक ही लेना चाहिये । पहले अैसा ही था । देहाती वैद्य बढ़अीसे ज्यादा नहीं कमाते थे । अुन्हें भी रोजी मिलती थी । मतलब यह कि सब धन्धोंकी कीमत बराबर और गुज़र लायक होनी चाहिये । वर्णकी विशेषता अुसकी संख्याका निश्चय करनेमें नहीं है; अुसकी विशेषता मनुष्यके कर्तव्यका निश्चय करनेमें है । वर्णकी संख्या भले अेक हो या अनेक, शास्त्रकारने तो चार वर्ण ज़रूरी मानकर बताये हैं । सबको बराबरीका दर्जा देनेके बाद अुन्हें चार मानें या अुनकी संख्या बिलकुल अुड़ा दें, अिससे बहुत फ़र्क नहीं पड़ता ।

अिस अर्थको सामने रखकर वर्णका पुनरुद्धार करनेकी कोशिश आश्रम करता है । भले वह समुद्रकी लहरोंको रोकने-जैसी हो । अुसकी जड़में दो बातें मैंने बताअी हैं : अूँचनीचका भाव मिटाना और सबको रोजीका अधिकार देकर सबकी रोजी अेक सरीखी रखना । यह मकसद पूरा करनेमें जितनी सफलता मिलेगी, अुतनी ही समाजको लाभ होगा ।

कोअी कहेगा कि मैं यह हानि कैसे भूल जाता हूँ कि अिस व्यवस्थासे विद्या प्राप्त करनेकी अुमंग कम हो जायगी । विद्याकी अुमंग आज जिस कारणसे होती है, वह अुसे कलंकित करती है, और अुस

हद तक वह कम हो जाय तो अुसमें भला ही है। विद्या मुक्तिके लिअे यानी सेवाके लिअे है। जिसमें सेवाकी लगन होगी, वह विद्या प्राप्त करनेकी कोशिश करेगा ही। अुसकी विद्या अुसे और समाजको सुशोभित करेगी। और जब अुसमेंसे रुपया पैदा करनेका लालच दूर हो जायगा, तब विद्याभ्यासका क्रम बदल जायगा और अुसे लेने और देनेका तरीका भी बदल जायगा। अुसका आज खूब दुरुपयोग होता है। अिस नये दृष्टिकोणका आदर हो, तो विद्याका कमसे कम दुरुपयोग हो।

होड़की गुंजायश फिर भी रहेगी। वह होड़ अच्छा बननेकी, सेवावृत्ति बढ़ानेकी होगी। और सबको गुज़रके लायक मिलता रहेगा, तो असन्तोष और अन्धाधुन्धी मिट जायगी।

अिस विचारश्रेणीके अनुसार वर्णका जो गलत अर्थ आज होता है, वह नहीं होना चाहिये। छुआछूत मिटनी चाहिये और रोटीबेटी व्यवहारके साथ वर्णका जो निकट सम्बन्ध आज है, वह टूटना चाहिये। किसके साथ खाया जाय और कौन किसके यहाँ शादी करे, अिसका वर्णके साथ कोअी ताल्लुक नहीं। मनुष्यको जहाँ खाना होगा, जहाँ अुसे पसन्द होगा, जहाँ अुसे प्रेमसे निमंत्रण मिलेगा, वहाँ वह खायेगा। स्त्री-पुरुषको जहाँ अपना श्रेय दिखेगा, वहाँ वे शादी करेंगे। आम तौरपर विवाह अेक ही वर्णमें होना सम्भव है। मगर दूसरे वर्णमें हो, तो पाप नहीं माना जा सकता। पापका निर्णय दूसरी ही तरह होगा। मनुष्यका बहिष्कार वर्णसे नहीं होगा, समाजसे होगा। समाजका विधान आजसे ज्यादा अच्छा होगा। अुसमें जो गन्दगी, पाखण्ड वगैरा घर कर चुके हैं, वे निकल जायँगे।

परिशिष्ट

१

हिन्दू समाजकी प्रतिज्ञा

[पं० मालवीयजीकी अध्यक्षतामें बम्बअीमें ता० २५-९-'३२ को हुअी हिन्दू परिषदका प्रस्ताव, '५१ वें पन्ने पर आये हुअे सम्बन्धको ध्यानमें रखकर, नीचे दिया जाता है ।

— प्रकाशक]

" यह परिषद प्रस्ताव करती है कि आजसे हिन्दू समाजमें किसीको भी जन्मके कारण अछूत नहीं माना जायगा, और जिन्हें आज तक अछूत गिना जाता है, अुन्हें आम कुओं, आम पाठशालाओं, आम रास्तों और दूसरी सभी सार्वजनिक संस्थाओंका अिस्तेमाल करनेका दूसरे हिन्दुओंके बराबर ही हक़ होगा । अिस हक़के लिअे मौक़ा मिलते ही कानूनकी मंजूरी ली जायगी । अगर स्वराज्य मिलने तक वह मंजूरी न मिली होगी, तो स्वराज्यकी पालियामेण्टके सबसे पहले क़ानूनोंमें यह अेक होगा ।

" साथ ही यह भी निश्चय किया जाता है कि आज कल अछूत माने जानेवाले वर्गों या तबकोंपर जो सामाजिक पाबंदियां रूढ़िके कारण लगी हुअी हैं, वे सब और मन्दिरोंमें जानेकी मनाअी भी तमाम वाजिब और शान्तिमय अुपायोंसे दूर कराना तमाम हिन्दू नेताओंका धर्म होगा । "

२

आश्रमका रहन सहन

[६० वें पन्नेपर गांधीजीने सत्याग्रह आश्रमके रहन सहनका जिक्र किया है । अुस रहन सहनकी जड़में कौनसा अुसूल है, यह आश्रमकी नियमावलीमेंसे लिये हुअे नीचे लिखे व्रतसे समझमें आ जायगा ।

— प्रकाशक]

अछूतपन मिटाना

" हिन्दूधर्ममें अछूतपनकी रूढ़िने जड़ पकड़ ली है । अुसमें धर्म नहीं बल्कि अधर्म है, अैसा विश्वास होनेके कारण अछूतपन मिटानेको

आश्रमके नियमोंमें जगह दी गअी है। अछूत माने जानेवालोंके लिअे दूसरी जातियोंके बराबर ही आश्रममें स्थान है।

"आश्रम जातपाँतका फर्क नहीं मानता। अैसा विश्वास है कि जातपाँतसे हिन्दू धर्मका नुकसान हुआ है। अुसमें जो अूँचनीच और छूतछातकी भावना है, वह अहिंसाधर्मके लिअे जहर है। आश्रम वर्णाश्रम धर्मको मानता है। अैसा मालूम पड़ता है कि अुसमेंकी वर्ण-व्यवस्थाका सिर्फ़ धंधे पर दारमदार है। अिसलिअे वर्णकी नीति पर चलनेवाला आदमी माँबापके धंधेसे रोज़ी कमा कर बाक़ीका वक़्त शुद्ध ज्ञान पानेमें और बढ़ानेमें लगाये। स्मृतियोंमें जो आश्रम व्यवस्था है, वह दुनियाका भला करनेवाली है। मगर वर्ण और आश्रमका धर्म मानते हुअे भी आश्रमका जीवन गीताके माने हुअे व्यापक और भावना प्रधान संन्यासका आदर्श सामने रखकर बनाया हुआ है, और अिसलिअे अुसमें वर्णके भेदकी गुंजायश नहीं।"

सूची